

संक्षिप्त भविष्यपुराणकी विषय-सूची

[क]

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
ब्राह्मपर्व		१४-तृतीया-कल्पका आरम्भ, गौरी-तृतीया-व्रत-विधान और उसका फल	४४
१-व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु एवं राजा शतानीकका संवाद, भविष्यपुराणकी महिमा एवं परम्परा, सृष्टि-वर्णन, चारों वेद, पुराण एवं चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चतुर्विध सृष्टि, काल-गणना, युगोंकी संख्या, उनके धर्म तथा संस्कार.....	१	१५-चतुर्थी-व्रत एवं गणेशजीकी कथा तथा सामुद्रिक शास्त्रका संक्षिप्त परिचय	४५
२-गर्भाधानसे यज्ञोपवीतपर्यन्त संस्कारोंकी संक्षिप्त विधि, अन्नप्रशंसा तथा भोजन-विधिके प्रसंगमें धनवर्धनकी कथा, हाथोंके तीर्थ एवं आचमन-विधि.....	९	१६-चतुर्थी-कल्प-वर्णनमें गणेशजीका विघ्न-अधिकार तथा उनकी पूजा-विधि	४६
३-वेदाध्ययन-विधि, ओंकार तथा गायत्री-माहात्म्य, आचार्यादि-लक्षण, ब्रह्मचारिधर्म-निरूपण, अभिवादन-विधि, स्नातककी महिमामें अङ्गिरापुत्रका आख्यान, माता-पिता और गुरुकी महिमा	१२	१७-पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण	४८
४-विवाह-संस्कारके उपक्रममें स्त्रियोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन तथा आचरणकी श्रेष्ठता	१९	१८-राजपुरुषोंके लक्षण	५२
५-गृहस्थाश्रममें धन एवं स्त्रीकी महत्ता, धन-सम्पादन करनेकी आवश्यकता तथा समान कुलमें विवाह-सम्बन्धकी प्रशंसा	२१	१९-स्त्रियोंके शुभाशुभ-लक्षण	५३
६-विवाह-सम्बन्धी तत्त्वोंका निरूपण, विवाहयोग्य कन्याके लक्षण, आठ प्रकारके विवाह, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि उत्तम देशोंका वर्णन	२३	२०-विनायक-पूजाका माहात्म्य.....	५४
७-धन एवं स्त्रीके तीन आश्रय तथा स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन	२५	२१-चतुर्थी-कल्पमें शिवा, शान्ता तथा सुखा-तीन प्रकारकी चतुर्थीका फल और उनका व्रत-विधान ..	५४
८-पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्य एवं सदाचारका वर्णन, स्त्रियोंके लिये गृहस्थ-धर्मके उत्तम व्यवहारकी आवश्यक बातें	२६	२२-पञ्चमी-कल्पका आरम्भ, नागपञ्चमीकी कथा, पञ्चमी-व्रतका विधान और फल	५६
९-पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन तथा व्रत-उपवासोंके प्रकरणमें आहारका निरूपण एवं प्रतिपदा तिथिकी उत्पत्ति, व्रत-विधि और माहात्म्य	३३	२३-सर्पोंके लक्षण, स्वरूप और जाति	५८
१०-प्रतिपत्कल्प-निरूपणमें ब्रह्माजीकी पूजा-अर्चाकी महिमा	३६	२४-विभिन्न तिथियों एवं नक्षत्रोंमें कालसर्पसे डँसे हुए पुरुषके लक्षण, नागोंकी उत्पत्तिकी कथा	६०
११-ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाकी महिमा	३८	२५-सर्पोंके विषका वेग, फैलाव तथा सात धातुओंमें प्राप्त विषके लक्षण और उनकी चिकित्सा.....	६१
१२-द्वितीया-कल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा एवं पुष्पद्वितीया-व्रतकी महिमा	३९	२६-सर्पोंकी भिन्न-भिन्न जातियाँ, सर्पोंके काटनेके लक्षण, पञ्चमी तिथिका नागोंसे सम्बन्ध और पञ्चमी तिथिमें नागोंके पूजनका फल एवं विधान.....	६३
१३-फल-द्वितीया (अशून्यशयन-व्रत)-का व्रत-विधान और द्वितीया-कल्पकी समाप्ति	४३	२७-षष्ठी-कल्प-निरूपणमें स्कन्द-षष्ठी-व्रतकी महिमा ..	६५
		२८-आचरणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन	६६
		२९-भगवान् कार्तिकेय तथा उनके षष्ठी-व्रतकी महिमा ..	६७
		३०-सप्तमी-कल्पमें भगवान् सूर्यके परिवारका निरूपण एवं शाक-सप्तमी-व्रत.....	६७
		३१-श्रीकृष्ण-साम्ब-संवाद तथा भगवान् सूर्यनारायणकी पूजन-विधि	७०
		३२-श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चनका विधान	७२
		३३-भगवान् सूर्यके पूजन एवं व्रतोद्यापनका विधान, द्वादश आदित्योंके नाम और रथसप्तमी-व्रतकी महिमा	७३
		३४-सूर्यदेवके रथ एवं उसके साथ भ्रमण करनेवाले देवता-नाग आदिका वर्णन	७५
		३५-भगवान् सूर्यकी महिमा, विभिन्न ऋतुओंमें उनके अलग-अलग वर्ण तथा उनके फल	७७

विषय	पृष्ठ-संख्या
३६-भगवान् सूर्यका अभिषेक एवं उनकी रथयात्रा.....	७८
३७-रथयात्रामें विघ्न होनेपर एवं गोचरमें दुष्ट ग्रहोंके आ जानेपर शान्तिका विधान और तिलकी महिमा.....	८१
३८-सूर्यनारायणकी रथ-यात्राका फल.....	८३
३९-रथसप्तमी तथा भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन	८४
४०-भगवान् सूर्यद्वारा योगका वर्णन एवं ब्रह्माजीद्वारा दिण्डीको दिया गया क्रियायोगका उपदेश.....	८५
४१-भगवान् सूर्यके व्रतोंके अनुष्ठान तथा उनके मन्दिरोंमें अर्चन-पूजनकी विधि तथा फल-सप्तमी-व्रतका फल.....	८८
४२-रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन त्याज्य पदार्थका निषेध तथा व्रतका विधान एवं फल.....	९०
४३-शंख एवं द्विज, वसिष्ठ एवं साम्ब तथा याज्ञवल्क्य और ब्रह्माके संवादमें आदित्यकी आराधनाका माहात्म्य-कथन, भगवान् सूर्यकी ब्रह्मरूपता.....	९१
४४-सूर्यनारायणके प्रिय पुष्य, सूर्यमन्दिरमें मार्जन-लेपन आदिका फल, दीपदानका फल तथा सिद्धार्थ-सप्तमी-व्रतका विधान और फल.....	९४
४५-शुभाशुभ स्वप्न और उनके फल.....	९६
४६-सिद्धार्थ (सर्षप)-सप्तमी-व्रतके उद्यापनकी विधि.....	९७
४७-ब्रह्माद्वारा कहा गया भगवान् सूर्यका नाम-स्तोत्र	९७
४८-जम्बूद्वीपमें सूर्यनारायणकी आराधनाके तीन प्रमुख स्थान, दुर्वासा मुनिका साम्बको शाप देना.....	९८
४९-सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन.....	१००
५०-देवर्षि नारदद्वारा सूर्यके विराटरूप तथा उनके प्रभावका वर्णन.....	१०१
५१-भगवान् सूर्यका परिवार.....	१०४
५२-सूर्यभगवान्को नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करनेका फल और विजया-सप्तमी-व्रतकी विधि.....	१०७
५३-द्वादश रविवारोंका वर्णन और नन्दादित्य-व्रतकी विधि.....	१०७
५४-भद्रादित्य, सौम्यादित्य और कामदादित्यवार-व्रतोंकी विधिका निरूपण.....	१०८
५५-पुत्रद, जय, जयन्तसंज्ञक आदित्यवार-व्रतोंकी विधि.....	१०९
५६-विजय, आदित्याभिमुख तथा हृदयवार-व्रतोंकी विधि.....	१०९
५७-रोगहा एवं महाश्वेतवार-व्रतकी विधि.....	११०
५८-सूर्यदेवकी पूजामें विविध उपचार और फल आदि निवेदन करनेका माहात्म्य.....	१११
५९-एक वैश्य तथा ब्राह्मणकी कथा, सूर्यमन्दिरमें पुराण-वाचन एवं भगवान् सूर्यको स्नानादि करानेका फल.....	११३

विषय	पृष्ठ-संख्या
६०-जया-सप्तमी-व्रतका वर्णन.....	११५
६१-जयन्ती-सप्तमीका विधान और फल.....	११६
६२-अपराजिता-सप्तमी एवं महाजया-सप्तमी-व्रतका वर्णन.....	११७
६३-नन्दा-सप्तमी तथा भद्रा-सप्तमी-व्रतका विधान.....	११८
६४-तिथियों और नक्षत्रोंके देवता तथा उनके पूजनका फल.....	११९
६५-सूर्य-पूजाका माहात्म्य.....	१२२
६६-त्रिवर्ग-सप्तमीकी महिमा.....	१२४
६७-कामदा एवं पापनाशिनी-सप्तमी-व्रत-वर्णन.....	१२५
६८-सूर्यपदद्वय-व्रत, सर्वाप्ति-सप्तमी एवं मार्तण्ड-सप्तमीकी विधि.....	१२६
६९-अनन्त-सप्तमी तथा अव्यङ्ग-सप्तमीका विधान.....	१२७
७०-सूर्यपूजामें भाव-शुद्धिकी आवश्यकता एवं त्रिप्राप्ति-सप्तमी-व्रत.....	१२८
७१-सूर्यमन्दिर-निर्माणका फल तथा यमराजका अपने दूतोंको सूर्यभक्तोंसे दूर रहनेका आदेश, घृत तथा दूधसे अभिषेकका फल.....	१२९
७२-कौसल्या और गौतमीके संवाद-रूपमें भगवान् सूर्यका माहात्म्य-निरूपण तथा भगवान् सूर्यके प्रिय पत्र-पुष्पादिका वर्णन.....	१३०
७३-सूर्य-भक्त सत्राजित्की कथा तथा त्रिविक्रम-व्रतकी विधि.....	१३१
७४-भोजकोंकी उत्पत्ति तथा उनके लक्षणोंका वर्णन....	१३४
७५-भद्र ब्राह्मणकी कथा एवं कार्तिक मासमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदानका फल.....	१३६
७६-यमदूत और नारकीय जीवोंके संवादके प्रसंगमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदान करने एवं दीप चुरानेके पुण्य-पापोंका परिणाम.....	१३७
७७-वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा	१३८
७८-भगवान् सूर्यनारायणके सौम्य रूपकी कथा, उनकी स्तुति और परिवार तथा देवताओंका वर्णन.....	१४०
७९-श्रीसूर्यनारायणके आयुध-व्योमका लक्षण और माहात्म्य.....	१४२
८०-साम्बद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना, कुष्ठरोगसे मुक्ति तथा सूर्यस्तवराजका कथन.....	१४४
८१-साम्बको सूर्य-प्रतिमाकी प्राप्ति.....	१४७
८२-मन्दिर-निर्माण-योग्य भूमि एवं मन्दिरमें प्रतिमाओंके स्थानका निरूपण.....	१४८
८३-सात प्रकारकी प्रतिमा एवं काष्ठ-प्रतिमाके निर्माणोपयोगी वृक्षोंके लक्षण.....	१४९
८४-सूर्य-प्रतिमाकी निर्माण-विधि.....	१५०

विषय	पृष्ठ-संख्या
८५-सूर्य-प्रतिष्ठाका मुहूर्त और मण्डप बनानेका विधान.....	१५१
८६-साम्बोपाख्यानके प्रसंगमें सूर्यकी अभिषेक-विधि	१५२
८७-भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके अधिवासन और प्रतिष्ठाका विधान तथा फल	१५३
८८-ध्वजारोपणका विधान और फल	१५५
८९-साम्बोपाख्यानमें मर्गोंका वर्णन	१५६
९०-अव्यङ्गका लक्षण और उसका माहात्म्य	१५७
९१-साम्बोपाख्यानमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करने और धूप दिखानेकी महिमा	१५८
९२-सूर्यमण्डलस्थ पुरुषका वर्णन	१५९
९३-भगवान् व्यासद्वारा योग-ज्ञानका वर्णन	१५९
९४-उत्तम एवं अधम भोजकोंके लक्षण.....	१६१
९५-भगवान् सूर्यके कालात्मक चक्रका वर्णन	१६२
९६-सूर्यचक्रका निर्माण और सूर्य-दीक्षाकी विधि	१६३
९७-भगवान् आदित्यकी सप्तावरण-पूजन-विधि	१६४
९८-सौरधर्मका वर्णन	१६५
९९-ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति एवं वर-प्राप्ति	१६६
१००-सौर-धर्म-निरूपणमें सूर्यावतारका कथन.....	१७२
१०१-ब्रह्मादि देवताओंद्वारा सूर्यके विराट्-रूपका दर्शन	१७४
१०२-सूर्योपासनाका फल	१७५
१०३-विभिन्न पुष्पोंद्वारा सूर्य-पूजनका फल	१७६
१०४-सूर्यपष्ठी-व्रतकी महिमा	१७८
१०५-उभयसप्तमी-व्रतका वर्णन	१७९
१०६-निक्षुभार्क-सप्तमी तथा निक्षुभार्क-चतुष्टय-व्रत- माहात्म्य-वर्णन	१८०
१०७-कामप्रद स्त्री-व्रतका वर्णन.....	१८१
१०८-भगवान् सूर्यके निमित्त गृह एवं रथ आदिके दानका माहात्म्य.....	१८१
१०९-सौर-धर्ममें सदाचरणका वर्णन	१८२
११०-सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन, ब्रह्माकृत सूर्य-स्तुति	१८३
१११-सौर-धर्ममें शान्तिक कर्म एवं अभिषेक-विधि ..	१८५
११२-विविध स्मृति-धर्मों तथा संस्कारोंका वर्णन	१९७
११३-श्राद्धके विविध भेद तथा वैश्वदेव-कर्मकी महिमा	१९८
११४-मातृ-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि.....	१९९
११५-सौर-धर्ममें शुद्धि-प्रकरण	२००
११६-श्रद्धाकी महिमा, खखोल्क-मन्त्रका माहात्म्य तथा गौकी महिमा	२०१
११७-पञ्चमहायज्ञ एवं अतिथि-माहात्म्य-वर्णन, सौर- धर्ममें दानकी महत्ता और पात्रापात्रका निर्णय तथा पञ्च महापातक	२०३

विषय	पृष्ठ-संख्या
११८-पातक, उपपातक, यममार्ग एवं यमयातनाका वर्णन.....	२०६
११९-सप्तमी-व्रतमें दन्तधावन-विधि-वर्णन	२०७
१२०-स्वप्न-फल-वर्णन तथा उदक-सप्तमी-व्रत	२०८
१२१-सूर्यनारायणकी महिमा, अर्घ्य प्रदान करनेका फल तथा आदित्य-पूजनकी विधियाँ.....	२०९
१२२-भगवान् भास्करके व्योम-पूजनकी विधि तथा आदित्य-माहात्म्य	२१३
१२३-सप्त-सप्तमी तथा द्वादश मास-सप्तमी-व्रतोंका वर्णन.....	२१५
१२४-अर्कसम्पुटिका-सप्तमीव्रत-विधि, सप्तमी-व्रत- माहात्म्यमें कौथुमिका आख्यान	२१६
१२५-मरिच-सप्तमी-व्रत-वर्णन	२१८
१२६-निम्ब-सप्तमी तथा फलसप्तमी-व्रतका वर्णन	२१८
१२७-ब्राह्मपर्व-श्रवणका माहात्म्य, पुराण-श्रवणकी विधि, पुराणों तथा पुराणवाचक व्यासकी महिमा	२२०
मध्यमपर्व (प्रथम भाग)	
१२८-गृहस्थाश्रम एवं धर्मकी महिमा	२२३
१२९-सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन.....	२२४
१३०-भूगोल एवं ज्योतिश्चक्रका वर्णन	२२६
१३१-ब्राह्मणोंकी महिमा तथा छब्बीस दोषोंका वर्णन ..	२२७
१३२-माता, पिता एवं गुरुकी महिमा.....	२२९
१३३-पुराण-श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमा	२३०
१३४-पूर्त-कर्म-निरूपण.....	२३२
१३५-प्रासाद, उद्यान आदिके निर्माणमें भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपणकी महिमा	२३४
१३६-देव-प्रतिमा-निर्माण-विधि	२३६
१३७-कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कारकी विधि और ग्रह-शान्तिका माहात्म्य.....	२३७
१३८-अग्नि-पूजन-विधि	२३९
१३९-विविध कर्मोंमें अग्निके नाम तथा होम-द्रव्योंका वर्णन.....	२४०
१४०-यज्ञ-पात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि	२४१
मध्यमपर्व (द्वितीय भाग)	
१४१-यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियोंके दर्शनका फल	२४३
१४२-यज्ञादि कर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य, विभिन्न कर्मोंमें पारिश्रमिक व्यवस्था और कलश-स्थापनका वर्णन.....	२४३
१४३-चतुर्विध मास-व्यवस्था एवं मलमास-वर्णन.....	२४५

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

१४४-काल-विभाग, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्य	२४६
१४५-गोत्र-प्रवर आदिके ज्ञानकी आवश्यकता	२४९
१४६-वास्तु-मण्डलके निर्माण एवं वास्तु-पूजनकी संक्षिप्त विधि	२४९
१४७-कुशकर्ण्डिका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओंके नाम	२५२
१४८-अधिवासनकर्म एवं यज्ञकर्ममें उपयोज्य उत्तम ब्राह्मण तथा धर्मदेवताका स्वरूप	२५४
१४९-प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा-विधि	२५५

मध्यमपर्व (तृतीय भाग)

१५०-उद्यान-प्रतिष्ठा-विधि	२५८
१५१-गोचर-भूमिके उत्सर्ग तथा लघु उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-विधि	२६०
१५२-अश्वत्थ, पुष्करिणी तथा जलाशयके प्रतिष्ठाकी विधि	२६२
१५३-वट, बिल्व तथा पूगीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्यानकी प्रतिष्ठा-विधि	२६३
१५४-मण्डप, महायूप और पौंसले आदिकी प्रतिष्ठा-विधि	२६४
१५५-पुष्पवाटिका तथा तुलसीकी प्रतिष्ठा-विधि	२६५
१५६-एकाह-प्रतिष्ठा तथा काली आदि देवियोंकी प्रतिष्ठा-विधि	२६६
१५७-दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षजन्य उत्पात तथा उनकी शान्तिके उपाय	२६७

प्रतिसर्गपर्व (प्रथम खण्ड)

१५८-सत्ययुगके राजवंशका वर्णन	२७१
१५९-त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन	२७४
१६०-द्वापरयुगके चन्द्रवंशीय राजाओंका वृत्तान्त	२७६
१६१-म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय	२७८
१६२-काश्यपके उपाध्याय, दीक्षित आदि दस पुत्रोंका नामोल्लेख, मगधके राजवंश और बौद्ध राजाओंका तथा चौहान और परमार आदि राजवंशोंका वर्णन	२८२
१६३-महाराज विक्रमादित्यके चरित्रका उपक्रम	२८४

प्रतिसर्गपर्व (द्वितीय खण्ड)

१६४-स्वामी एवं सेवककी परस्पर भक्तिका आदर्श	२८६
१६५-ब्राह्मण-पुत्री महादेवीकी कथा	२८७
१६६-समान-वर्णमें विवाह-सम्बन्धका औचित्य	२८९
१६७-विषयी राजा राज्यके विनाशका कारण बनता है	२९०
१६८-किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है	२९२
१६९-जीवन-दानका आदर्श	२९३

विषय	पृष्ठ-संख्या
------	--------------

१७०-साधनामें मनोयोगकी महत्ता	२९४
१७१-संतानमें समान-भाव रखें	२९५
१७२-पढ़ो कम, समझो ज्यादा	२९७
१७३-सत्यनारायणव्रत-कथा	२९९
१७४-सत्यनारायणव्रत-कथामें शतानन्द ब्राह्मणकी कथा	३०२
१७५-सत्यनारायणव्रत-कथामें राजा चन्द्रचूडका आख्यान	३०५
१७६-सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें लकड़हारोंकी कथा	३०६
१७७-सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें साधु वर्णिक एवं जामाताकी कथा	३०७
१७८-सत्यधर्मके आश्रयसे सबका उद्धार	३०९
१७९-पितृशर्मा और उनके वंशज—व्याडि, पाणिनि और वररुचि आदिकी कथा	३१३
१८०-महर्षि पाणिनिका इतिवृत्त	३१४
१८१-बोपदेवके चरित्र-प्रसंगमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्य	३१५
१८२-श्रीदुर्गासप्तशतीके आदिचरित्रका माहात्म्य	३१६
१८३-श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रका माहात्म्य	३१७
१८४-श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तरचरित्रकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिका चरित्र	३१८

प्रतिसर्गपर्व (तृतीय खण्ड)

१८५-आल्हा खण्ड (आल्हा-ऊदलकी कथा)-का उपक्रम	३१९
१८६-राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा	३२०
१८७-राजा भोज और महामदकी कथा	३२२
१८८-देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंका आविर्भाव	३२२

प्रतिसर्गपर्व (चतुर्थ खण्ड)

१८९-कलियुगमें उत्पन्न आन्ध्रवंशीय राजाओंके वंश-वृक्षका वर्णन	३२४
१९०-राजपूताना तथा दिल्लीनगरके राजवंशका इतिहास	३२६
१९१-ब्राह्मणोंकी उत्पत्तिके प्रसंगमें शुक्लवंश एवं उसके आगे होनेवाले विभिन्न क्षत्रियवंशोंका वर्णन	३२७
१९२-परिहारवंश और बंगालके शूरवंश आदिका वर्णन	३२९
१९३-भगवान्से चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चारों युगोंमें भगवान्के अवतारों एवं चारों युगोंके मनुष्योंकी आयुका निरूपण	३३१
१९४-दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन और तैमूरलंगका उत्पात	३३२
१९५-भगवान् सूर्यके तेजसे आचार्य ईश्वरपुरी, आचार्य रामानन्द और निम्बार्काचार्यका आविर्भाव	३३३
१९६-आचार्य मध्व, श्रीधरस्वामी, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भट्टोजिदीक्षित तथा वराहमिहिर आदिके आविर्भावकी कथा	३३६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१९७-वैद्यराज धन्वन्तरि, सुश्रुत और भक्त कवि जयदेवजीका चरित्र	३४०
१९८-चैतन्य महाप्रभु, वाल्मीकि और शंकराचार्यके आविर्भावकी कथा	३४२
१९९-गिरिशर्मा, वनशर्मा तथा पुरीशर्माके आविर्भावका आख्यान	३४५
२००-भारती, नाथशर्मा, क्षेत्रशर्मा तथा हुंढिराजकी उत्पत्ति-कथा	३४६
२०१-अघोरपंथी भैरव तथा बालशर्माकी उत्पत्तिकी कथामें रावण तथा हनुमान्जीका चरित्र	३५०
२०२-रुद्रमाहात्म्य, भवके अंशसे रामानुजाचार्यका आविर्भाव	३५१
२०३-वसुदेवताओंके अंशसे कुबेर आदिकी उत्पत्ति, रामायणकी संक्षिप्त कथा एवं त्रिलोचन भक्तका वृत्तान्त	३५२
२०४-रामानन्दजीके शिष्य नामदेव, भक्त रंकण (रौंका) एवं यंकणा (बाँका)-का चरित्र, वरुणदेव और पराम्बाकी महिमा	३५४
२०५-संत कबीर, भक्त नरसी मेहता, पीपा, नानक तथा साधु नित्यानन्दजीके पूर्वजन्मोंकी कथा	३५५
२०६-अश्विनीकुमारोंके अंशसे सधन (सदन कसाई) और रैदासकी उत्पत्ति-कथा	३५७
२०७-यज्ञांश चैतन्यमहाप्रभुका चरित्र एवं अन्य आचार्योंका भी उनके भक्ति-भावसे प्रभावित होना	३५८
२०८-भक्तोंसहित चैतन्यमहाप्रभुकी जगन्नाथपुरी-यात्रा एवं साक्षात् भगवान्से वार्तालाप	३६०
२०९-मुनिश्रेष्ठ कण्वके उपाध्याय, दीक्षित तथा पाठक आदि दस पुत्रोंकी उत्पत्ति, चैतन्य महाप्रभु आदि आचार्योंद्वारा शुद्धिपूर्वक वैष्णवधर्मका विस्तार ...	३६१
२१०-अकबर आदि अन्तिम मुगल शासकोंका चरित्र, तुलसीदास, सूरदास, मीरबाई, तानसेन तथा बीरबल आदिके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त, गुरुण्ड, मौन और सर्वत्र म्लेच्छराज्यका विस्तार	३६४
२११-कलिके द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ चरणोंका वृत्तान्त तथा कल्कि भगवान्का अवतार	३६९
२१२-भगवान् कल्किकी विजय, सत्ययुगकी उत्पत्तिकथा, अक्षयनवमीमें आँवलेके पूजनका माहात्म्य, अयोध्यामें महाराज वैवस्वतका प्रतिष्ठित होना तथा प्रतिसर्गपर्वका उपसंहार	३७१

उत्तरपर्व

२१३-महाराज युधिष्ठिरके पास व्यासादि महर्षियोंका आगमन एवं उनसे उपदेश करनेके लिये	
--	--

विषय	पृष्ठ-संख्या
युधिष्ठिरकी प्रार्थना	३७३
२१४-भुवनकोशका संक्षिप्त वर्णन	३७४
२१५-नारदजीको विष्णु-मायाका दर्शन	३७६
२१६-संसारके दोषोंका वर्णन	३७८
२१७-विविध प्रकारके पापों एवं पुण्य-कर्मोंका फल ..	३८२
२१८-व्रतोपवासकी महिमामें शकटव्रतकी कथा	३८६
२१९-तिलकव्रतके माहात्म्यमें चित्रलेखाका चरित्र	३८७
२२०-अशोकव्रत तथा करवीरव्रतका माहात्म्य	३८८
२२१-कोकिलाव्रतका विधान और माहात्म्य	३८९
२२२-बृहत्तपोव्रतका विधान और फल	३८९
२२३-जातिस्मर-भद्रव्रतका फल और विधान तथा स्वर्णष्ठीवीकी कथा	३९१
२२४-यमद्वितीया तथा अशून्यशयन-व्रतकी विधि	३९४
२२५-मधूकतृतीया एवं मेघपाली तृतीयाव्रत	३९५
२२६-पञ्चाग्निसाधन नामक रम्भा-तृतीया तथा गोष्पद- तृतीयाव्रत	३९६
२२७-हरकालीव्रत-कथा	३९८
२२८-ललितातृतीया-व्रतकी विधि	३९९
२२९-अवियोगतृतीया-व्रत	४००
२३०-उमा-महेश्वर-व्रतकी विधि	४०१
२३१-रम्भातृतीया-व्रतका माहात्म्य	४०२
२३२-सौभाग्यशयन-व्रतकी विधि	४०४
२३३-अनन्त-तृतीया तथा रसकल्याणिनी तृतीया-व्रत ..	४०५
२३४-आर्द्रानन्दकरी तृतीयाव्रत	४०८
२३५-चैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्ल तृतीया-व्रतका विधान और फल	४०९
२३६-आनन्तर्य-तृतीयाव्रत	४१०
२३७-अक्षय-तृतीयाव्रतके प्रसंगमें धर्म वणिक्का चरित्र	४१३
२३८-शान्तिव्रत	४१४
२३९-सरस्वतीव्रतका विधान और फल	४१४
२४०-श्रीपञ्चमीव्रत-कथा	४१५
२४१-विशोक-षष्ठी-व्रत	४१७
२४२-कमलषष्ठी (फलषष्ठी)-व्रत	४१८
२४३-मन्दार-षष्ठी-व्रत	४१८
२४४-ललिताषष्ठी-व्रतकी विधि	४१९
२४५-कुमारषष्ठी-व्रतकी कथा	४२०
२४६-विजया-सप्तमीव्रत	४२१
२४७-आदित्य-मण्डलदान-विधि	४२२
२४८-वर्ज्यसप्तमीव्रत	४२२
२४९-कुक्कुट-मर्कटी-व्रतकथा (मुक्ताभरण सप्तमीव्रत-कथा)	४२२
२५०-उभय-सप्तमीव्रत	४२४

विषय	पृष्ठ-संख्या
२५१-कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि	४२५
२५२-शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि	४२६
२५३-कमलसप्तमी-व्रत	४२७
२५४-शुभसप्तमी-व्रतकी विधि	४२७
२५५-सप्तमी-स्नपनव्रत और उसकी विधि	४२८
२५६-अचलासप्तमी-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि	४३०
२५७-बुधाष्टमीव्रत-कथा तथा माहात्म्य	४३२
२५८-श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि	४३४
२५९-दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीव्रतका विधान	४३७
२६०-मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतोंकी विधि	४३७
२६१-अनघाष्टमी-व्रतकी कथा एवं विधि	४३९
२६२-सोमाष्टमी-व्रत-विधान	४४१
२६३-श्रीवृक्षनवमी-व्रत-कथा	४४१
२६४-ध्वजनवमी-व्रत-कथा	४४२
२६५-उल्का-नवमी-व्रतका विधान और फल	४४३
२६६-दशावतारव्रत-कथा, विधान और फल	४४४
२६७-आशादशमी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान	४४५
२६८-तारकद्वादशीके प्रसंगमें राजा कुशध्वजकी कथा तथा व्रत-विधान	४४७
२६९-अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल	४४८
२७०-रोहिणीचन्द्र-व्रत तथा अवियोग-व्रतका विधान	४४८
२७१-गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा	४४९
२७२-देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशी-व्रतोंका विधान	४५३
२७३-नीराजनद्वादशी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान	४५६
२७४-भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा	४५७
२७५-मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-व्रतका विधान	४५८
२७६-श्रवणद्वादशी-व्रतके प्रसंगमें एक वणिक्की कथा	४६०
२७७-विजय-श्रवण-द्वादशीव्रतमें वामनावतारकी कथा तथा व्रत-विधि	४६२
२७८-सम्प्राप्ति-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीव्रत	४६४
२७९-अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल- द्वादशी-व्रतोंका विधान	४६४
२८०-सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा	४६६
२८१-धरणी-व्रत (अर्चावतार-व्रत)	४६७
२८२-विशोकद्वादशी-व्रत और गुडधेनु आदि दस धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा	४६९
२८३-विभूतिद्वादशी-व्रतमें राजा पुष्पवाहनकी कथा ...	४७१
२८४-मदनद्वादशी-व्रतमें मरुद्वर्णोंका आख्यान	४७४
२८५-अबाधक-व्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशक व्रतका माहात्म्य	४७६

विषय	पृष्ठ-संख्या
२८६-धर्मराजका समाराधन-व्रत	४७७
२८७-अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रत	४७८
२८८-पाली-व्रत एवं रम्भा (कदली)-व्रत	४७९
२८९-आग्नेयी शिवचतुर्दशी-व्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान	४८०
२९०-अनन्तचतुर्दशी-व्रत-विधान	४८२
२९१-श्रवणिकाव्रत-कथा एवं व्रत-विधि	४८४
२९२-नक्त एवं शिवचतुर्दशी-व्रतकी विधि	४८६
२९३-सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रत	४८७
२९४-पौर्णमासी-व्रत-विधान एवं अमावास्यामें श्राद्ध- तर्पणकी महिमा	४८८
२९५-वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि ..	४८९
२९६-युगादि तिथियोंकी विधि	४९०
२९७-सावित्री-व्रतकथा एवं व्रत-विधि	४९०
२९८-महाकार्तिकी-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान	४९३
२९९-मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाव्रत-विधि	४९४
३००-अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त	४९६
३०१-मास-नक्षत्र-व्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा	४९७
३०२-वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-व्रतोंका विधान	४९९
३०३-भग्नव्रतकी प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-व्रत ..	५०१
३०४-वृन्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्रव्रतकी विधि	५०२
३०५-शनैश्चर-व्रतके प्रसंगमें महामुनि पिप्पलादका आख्यान	५०३
३०६-आदित्यवार नक्त-व्रत तथा संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि	५०५
३०७-भद्राका चरित्र एवं उसके व्रतकी विधि	५०६
३०८-महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्घ्य-दानकी विधि	५०८
३०९-नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्घ्य देनेकी विधि	५११
३१०-प्रकीर्ण-व्रत	५१२
३११-माघ-स्नान-विधि	५१८
३१२-स्नान और तर्पण-विधि	५२०
३१३-रुद्र-स्नानकी विधि	५२२
३१४-ग्रहण-स्नानका माहात्म्य और विधान	५२३
३१५-मरणासन्न (मृत्युके पूर्व) प्राणीके कर्तव्य तथा ध्यानके चतुर्विध भेद	५२४
३१६-इष्टापूर्तकी महिमा	५२६
३१७-दीपदानकी महिमाके प्रसंगमें जातिस्मरा रानी ललिताका आख्यान	५२८

विषय	पृष्ठ-संख्या
३१८-वृषोत्सर्गकी महिमा	५३०
३१९-फाल्गुन-पूर्णिमोत्सव	५३१
३२०-दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन	५३२
३२१-श्रावणपूर्णिमाको रक्षाबन्धनकी विधि	५३६
३२२-महानवमी (विजयादशमी)-व्रत	५३७
३२३-इन्द्रध्वजोत्सवके प्रसंगमें उपरिचर वसुका वृत्तान्त	५३९
३२४-दीपमालिकोत्सव	५४०
३२५-शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन	५४२
३२६-कोटिहोमका विधान	५४८
३२७-महाशान्ति-विधान	५५०
३२८-विनायक-शान्ति	५५२
३२९-नक्षत्रार्चन-विधि (रोगावलिचक्र)	५५३
३३०-अपराधशतशमन-व्रत	५५४
३३१-काञ्चनपुरीव्रत-विधि	५५५
३३२-कन्यादान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य ..	५५७
३३३-दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि ..	५५८
३३४-तिलधेनु-दानकी विधि	५६०
३३५-जलधेनु-दानके प्रसंगमें महर्षि मुद्गलका आख्यान	५६१
३३६-घृतधेनुदान-विधि	५६३
३३७-लवणधेनुदान-विधि	५६४
३३८-सुवर्णधेनुदान-विधि	५६५
३३९-रत्नधेनुदान-विधि	५६५
३४०-उभयमुखी धेनु-दानका माहात्म्य	५६६
३४१-गोसहस्रदान-विधि	५६७
३४२-वृषभदानकी महिमा	५६८
३४३-कपिलादानकी महिमा	५६९
३४४-महिषी एवं मेघी-दानकी विधि	५७१
३४५-भूमिदानकी महिमा	५७२
३४६-सुवर्णरचित भूदानकी विधि	५७३
३४७-हलपंक्तिदान-विधि	५७४
३४८-आपाक-दानके प्रसंगमें राजा हव्यवाहनकी कथा ..	५७५
३४९-गृहदान-विधि	५७७
३५०-अन्नदानकी महिमाके प्रसंगमें राजा श्वेत और एक वैश्यकी कथा	५७८
३५१-स्थालीदानकी महिमामें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी	

विषय	पृष्ठ-संख्या
कथा	५८१
३५२-दासीदान-विधि	५८२
३५३-प्रपा (पौंसला) और अग्रीष्टिका (अँगीठी)- दानकी महिमा	५८३
३५४-विद्यादानकी महिमा	५८४
३५५-तुलापुरुषदानकी विधि	५८५
३५६-हिरण्यगर्भ-दानकी विधि	५८९
३५७-ब्रह्माण्डदान-विधि	५९१
३५८-कल्पवृक्ष एवं कल्पलता-दानकी विधि	५९३
३५९-गजरथ-अश्वरथदान-विधि	५९५
३६०-कालपुरुषदान-विधि	५९७
३६१-सप्तसागरदान-विधि	५९८
३६२-महाभूतघटदान-विधि	५९९
३६३-शय्यादान एवं मृतशय्यादान-विधि	५९९
३६४-आत्मप्रतिकृतिदान-विधि	६००
३६५-हिरण्याश्वदान-विधि	६०१
३६६-हिरण्याश्वरथ-दानकी विधि	६०२
३६७-कृष्णाजिन (मृगछाला)-दान-विधि	६०३
३६८-हेमहस्तिरथ-दानकी विधि	६०३
३६९-विश्वचक्रदान-विधि	६०४
३७०-भुवनप्रतिष्ठाका माहात्म्य, धर्मात्मा रजिकी कथा ..	६०६
३७१-नक्षत्रदान (नक्षत्रोंमें दानके पदार्थ)	६०८
३७२-तिथिदान (तिथियोंमें दानके पदार्थ)	६०९
३७३-वराहदानका विधान	६१२
३७४-दशविध पर्वत-दानोंमें धान्यशैलदानकी विधि और महिमा	६१२
३७५-लवणाचलदान-विधि तथा गुडपर्वतकी महिमाके प्रसंगमें सुलभाका आख्यान	६१५
३७६-सुवर्ण एवं तिलशैलदान-विधि, तिलोंकी महिमा	६१७
३७७-कपास एवं घृतपर्वतोंके दानकी महिमा	६१८
३७८-रत्नाचल और रौप्याचल-दानका माहात्म्य	६१९
३७९-शर्कराचल और लवणाचल-दानकी महिमा	६२०
३८०-सदाचारधर्मका निरूपण	६२२
३८१-रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत	६२८
३८२-श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादका उपसंहार और भगवान्का द्वारकागमन	६२९
३८३-भविष्योत्तरपर्वकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका	६३०

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

संक्षिप्त भविष्यपुराण

ब्राह्मपर्व

व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु एवं राजा शतानीकका संवाद, भविष्यपुराणकी महिमा एवं परम्परा, सृष्टि-वर्णन, चारों वेद, पुराण एवं चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चतुर्विध सृष्टि, काल-गणना, युगोंकी संख्या, उनके धर्म तथा संस्कार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

‘बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण तथा श्रीनर (अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके नित्य-सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन), उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार कर जय*—आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर दैवी सम्पत्तियोंको विजय प्राप्त करानेवाले वाल्मीकीय रामायण, महाभारत एवं अन्य सभी इतिहास-पुराणादि सद्ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये।’

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ॥

‘पराशरके पुत्र तथा सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत अमृतमयी वाणीका यह सम्पूर्ण विश्व पान करता है।’

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।

पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात् समग्रां

पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव ॥

‘वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले तथा अनेक विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् ब्राह्मणको स्वर्णजटित सींगोंवाली सैकड़ों गौओंको दान देनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ठीक उतना ही पुण्य इस भविष्यमहापुराणकी उत्तम कथाओंके श्रवण करनेसे प्राप्त होता है।’

एक समय व्यासजीके शिष्य महर्षि सुमन्तु तथा वसिष्ठ, पराशर, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, गौतम, वैशम्पायन, शौनक, अङ्गिरा और भारद्वाजादि महर्षिगण पाण्डववंशमें समुत्पन्न महाबलशाली राजा शतानीककी सभामें गये। राजाने उन ऋषियोंका अर्घ्यादिसे विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसनोंपर बैठाया तथा भलीभाँति उनका पूजन कर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की—‘हे महात्माओ! आपलोगोंके आगमनसे मेरा जन्म सफल हो गया। आपलोगोंके स्मरणमात्रसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, फिर आपलोग मुझे दर्शन देनेके लिये यहाँ पधारे हैं, अतः आज मैं धन्य हो गया। आपलोग कृपा करके मुझे उन

* ‘जय’ शब्दकी व्याख्या प्रायः कई पुराणोंमें आयी है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वके चौथे अध्याय (श्लोक ८६ से ८८) में इसे विस्तारसे समझाया गया है, वहाँ देखना चाहिये।

पवित्र एवं पुण्यमयी धर्मशास्त्रकी कथाओंको सुनायें, जिनके सुननेसे मुझे परमगतिकी प्राप्ति हो।'

ऋषियोंने कहा—हे राजन्! इस विषयमें आप हम सबके गुरु, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् वेदव्याससे निवेदन करें। वे कृपालु हैं, सभी प्रकारके शास्त्रोंके और विद्याओंके ज्ञाता हैं। जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है, उस 'महाभारत' ग्रन्थके रचयिता भी यही हैं।

राजा शतानीकने ऋषियोंके कथनानुसार सभी शास्त्रोंके जाननेवाले भगवान् वेदव्याससे प्रार्थनापूर्वक जिज्ञासा की—प्रभो! मुझे आप धर्ममयी पुण्य-कथाओंका श्रवण करायें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ और इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार हो जाय।

व्यासजीने कहा—'राजन्! यह मेरा शिष्य सुमन्तु महान् तेजस्वी एवं समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता है, यह आपकी जिज्ञासाको पूर्ण करेगा।' मुनियोंने भी इस बातका अनुमोदन किया। तदनन्तर राजा शतानीकने महामुनि सुमन्तुसे उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की—हे द्विजश्रेष्ठ! आप कृपाकर उन पुण्यमयी कथाओंका वर्णन करें, जिनके सुननेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है।

महामुनि सुमन्तु बोले—राजन्! धर्मशास्त्र सबको पवित्र करनेवाले हैं। उनके सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। बताओ, तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है?

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणदेव! वे कौनसे धर्मशास्त्र हैं, जिनके सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! मनु, विष्णु, यम,

अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत तथा अत्रि आदि ऋषियोंद्वारा रचित मन्वादि बहुत-से धर्मशास्त्र हैं। इन धर्मशास्त्रोंको सुनकर एवं उनके रहस्योंको भलीभाँति हृदयङ्गमकर मनुष्य देवलोकमें जाकर परम आनन्दको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शतानीकने कहा—प्रभो! जिन धर्मशास्त्रोंको आपने कहा है, इन्हें मैंने सुना है। अब इन्हें पुनः सुननेकी इच्छा नहीं है। कृपाकर आप चारों वर्णोंके कल्याणके लिये जो उपयुक्त धर्मशास्त्र हो उसे मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे महाबाहो! संसारमें निमग्न प्राणियोंके उद्धारके लिये अठारह महापुराण, श्रीरामकथा तथा महाभारत आदि सद्ग्रन्थ नौकारूपी साधन हैं। अठारह महापुराणों तथा आठ प्रकारके व्याकरणोंको भलीभाँति समझकर सत्यवतीके पुत्र वेदव्यासजीने 'महाभारतसंहिता' की रचना की, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इनमें आठ प्रकारके व्याकरण ये हैं—ब्राह्म, ऐन्द्र, याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र्य तथा वैष्णव। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड—ये अठारह महापुराण हैं। ये सभी-चारों वर्णोंके लिये उपकारक हैं। इनमेंसे आप क्या सुनना चाहते हैं?

राजा शतानीकने कहा—हे विप्र! मैंने महाभारत सुना है तथा श्रीरामकथा भी सुनी है, अन्य पुराणोंको भी सुना है, किंतु भविष्यपुराण नहीं सुना है। अतः विप्रश्रेष्ठ! आप भविष्यपुराणको मुझे सुनायें, इस विषयमें मुझे महत् कौतूहल है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। मैं आपको भविष्यपुराणकी कथा सुनाता हूँ, जिसके श्रवण करनेसे ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और अश्वमेधादि यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है तथा अन्तमें सूर्यलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह उत्तम पुराण पहले ब्रह्माजीद्वारा कहा गया है। विद्वान् ब्राह्मणको इसका सम्यक् अध्ययन कर अपने शिष्यों तथा चारों वर्णोंके लिये उपदेश करना चाहिये। इस पुराणमें श्रौत एवं स्मार्त सभी धर्मोंका वर्णन हुआ है। यह पुराण परम मङ्गलप्रद, सदबुद्धिको बढ़ानेवाला, यश एवं कीर्ति प्रदान करनेवाला तथा परमपद—मोक्ष प्राप्त करानेवाला है—

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम्।

इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम्॥

(ब्राह्मपर्व १।७९)

इस भविष्यपुराणमें सभी धर्मोंका संनिवेश हुआ है तथा सभी कर्मोंके गुणों और दोषोंके फलोंका निरूपण किया गया है। चारों वर्णों तथा आश्रमोंके सदाचारका भी वर्णन किया गया है, क्योंकि 'सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है' ऐसा श्रुतियोंने कहा है, इसलिये ब्राह्मणको नित्य आचारका पालन करना चाहिये, क्योंकि सदाचारसे विहीन ब्राह्मण किसी भी प्रकार वेदके फलको प्राप्त नहीं कर सकता। सदा आचारका पालन करनेपर तो वह सम्पूर्ण फलोंका अधिकारी हो जाता है, ऐसा कहा गया है। सदाचारको ही मुनियोंने धर्म तथा

तपस्याओंका मूल आधार माना है, मनुष्य भी इसीका आश्रय लेकर धर्माचरण करते हैं। इस प्रकार इस भविष्यमहापुराणमें आचारका वर्णन किया गया है^१। तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, विवाहादि संस्कार-विधि, स्त्री-पुरुषोंके लक्षण, देवपूजाका विधान, राजाओंके धर्म एवं कर्तव्यका निर्णय, सूर्यनारायण, विष्णु, रुद्र, दुर्गा तथा सत्यनारायणका माहात्म्य एवं पूजा-विधान, विविध तीर्थोंका वर्णन, आपद्धर्म तथा प्रायश्चित्त-विधि, संध्याविधि, स्नान, तर्पण, वैश्वदेव, भोजनविधि, जातिधर्म, कुलधर्म, वेदधर्म तथा यज्ञ-मण्डलमें अनुष्ठित होनेवाले विविध यज्ञोंका वर्णन हुआ है।

हे कुरुश्रेष्ठ शतानीक! इस महापुराणको ब्रह्माजीने शंकरको, शंकरने विष्णुको, विष्णुने नारदको, नारदने इन्द्रको, इन्द्रने पराशरको तथा पराशरने व्यासको सुनाया और व्याससे मैंने प्राप्त किया। इस प्रकार परम्परा-प्राप्त इस उत्तम भविष्यमहापुराणको मैं आपसे कहता हूँ, इसे सुनें।

इस भविष्यमहापुराणकी श्लोक-संख्या पचास हजार है^२। इसे भक्तिपूर्वक सुननेवाला ऋद्धि, वृद्धि तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। ब्रह्माजीद्वारा प्रोक्त इस महापुराणमें पाँच पर्व कहे गये हैं— (१) ब्राह्म, (२) वैष्णव, (३) शैव, (४) त्वाष्ट्र तथा (५) प्रतिसर्गपर्व। पुराणके सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पाँच लक्षण बताये गये हैं तथा इसमें चौदह विद्याओंका भी वर्णन है^३। चौदह विद्याएँ इस प्रकार हैं— चार वेद (ऋक्,

१-आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तश्च नरोत्तमः। तस्मादस्मिन् समायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते। आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक् स्मृतः॥

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्। सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्॥

अन्ये च मानवा राजन्नाचारं संश्रिताः सदा। एवमस्मिन् पुराणे तु आचारस्य तु कीर्तनम्॥ (ब्राह्मपर्व १।८१-८४)

२-वर्तमान समयमें भविष्यपुराणका जो संस्करण उपलब्ध है, उसमें ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर नामक चार सर्ग मिलते हैं और श्लोक-संख्या भी पचास हजारके स्थानपर लगभग अट्ठाईस हजार है। इसमें भी कुछ अंश प्रक्षिप्त माने जाते हैं।

३-सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च॥

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्। चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं

कुरुनन्दन॥ (ब्राह्मपर्व २।४-५)

यजुः, साम, अथर्व), छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र—इन चारोंको मिलानेसे अठारह विद्याएँ होती हैं।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन्! अब मैं भूतसर्ग अर्थात् समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापोंकी निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करता है।

हे तात! पूर्वकालमें यह सारा संसार अन्धकारसे व्याप्त था, कोई पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता था, अविज्ञेय था, अतर्क्य था और प्रसुप्त-सा था। उस समय सूक्ष्म अतीन्द्रिय और सर्वभूतमय उन परब्रह्म परमात्मा भगवान् भास्करने अपने शरीरसे नानाविध सृष्टि करनेकी इच्छा की और सर्वप्रथम परमात्माने जलको उत्पन्न किया तथा उसमें अपने वीर्यरूप शक्तिका आधान किया। इससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ। वह वीर्य जलमें गिरनेसे अत्यन्त प्रकाशमान सुवर्णका अण्ड हो गया। उस अण्डके मध्यसे सृष्टिकर्ता चतुर्मुख लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।

नर (भगवान्)-से जलकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जलको नार कहते हैं। वह नार जिसका पहले अयन (स्थान) हुआ, उसे नारायण कहते हैं। ये सदसद्रूप, अव्यक्त एवं नित्यकारण हैं, इनसे जिस पुरुष-विशेषकी सृष्टि हुई, वे लोकमें ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माजीने दीर्घकालतक तपस्या की और उस अण्डके दो भाग कर दिये। एक भागसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की, मध्यमें स्वर्ग, आठों दिशाओं तथा वरुणका

निवास-स्थान अर्थात् समुद्र बनाया। फिर महदादि तत्त्वोंकी तथा सभी प्राणियोंकी रचना की।

परमात्माने सर्वप्रथम आकाशको उत्पन्न किया और फिर क्रमसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन तत्त्वोंकी रचना की। सृष्टिके आदिमें ही ब्रह्माजीने उन सबके नाम और कर्म वेदोंके निर्देशानुसार ही नियत कर उनकी अलग-अलग संस्थाएँ बना दीं। देवताओंके तुषित आदि गण, ज्योतिष्टोमादि सनातन यज्ञ, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, सम एवं विषम भूमि आदि उत्पन्न कर कालके विभागों (संवत्सर, दिन, मास आदि) और ऋतुओं आदिकी रचना की। काम, क्रोध आदिकी रचना कर विविध कर्मोंके सदसद्विवेकके लिये धर्म और अधर्मकी रचना की और नानाविध प्राणिजगत्की सृष्टि कर उनको सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे संयुक्त किया। जो कर्म जिसने किया था तदनुसार उनकी (इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि) पदोंपर नियुक्ति हुई। हिंसा, अहिंसा, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवोंका जैसा स्वभाव था, वह वैसे ही उनमें प्रविष्ट हुआ, जैसे विभिन्न ऋतुओंमें वृक्षोंमें पुष्प, फल आदि उत्पन्न होते हैं।

इस लोककी अभिवृद्धिके लिये ब्रह्माजीने अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरु अर्थात् जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद उत्पन्न हुए। पूर्व-मुखसे ऋग्वेद प्रकट हुआ, उसे वसिष्ठ-मुनिने ग्रहण किया। दक्षिण-मुखसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यने ग्रहण किया। पश्चिम-मुखसे सामवेद निःसृत हुआ, उसे गौतम-ऋषिने धारण किया और उत्तर-मुखसे अथर्ववेद प्रादुर्भूत हुआ, जिसे लोकपूजित महर्षि शौनकने ग्रहण किया। ब्रह्माजीके लोकप्रसिद्ध पञ्चम (ऊर्ध्व)

मुखसे अठारह पुराण, इतिहास और यमादि स्मृति-शास्त्र उत्पन्न हुए^१।

इसके बाद ब्रह्माजीने अपने देहके दो भाग किये। दाहिने भागको पुरुष तथा बायें भागको स्त्री बनाया और उसमें विराट् पुरुषकी सृष्टि की। उस विराट् पुरुषने नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छासे बहुत कालतक तपस्या की और सर्वप्रथम दस ऋषियोंको उत्पन्न किया, जो प्रजापति कहलाये। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) नारद, (२) भृगु, (३) वसिष्ठ, (४) प्रचेता, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) पुलस्त्य, (८) अत्रि, (९) अङ्गिरा और (१०) मरीचि। इसी प्रकार अन्य महातेजस्वी ऋषि भी उत्पन्न हुए। अनन्तर देवता, ऋषि, दैत्य और राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदि योनियोंके अनेक गण उत्पन्न किये और उनके रहनेके स्थानोंको बनाया। विद्युत्, मेघ, वज्र, इन्द्रधनुष, धूमकेतु (पुच्छल तारे), उल्का, निर्घात (बादलोंकी गड़गड़ाहट) और छोटे-बड़े नक्षत्रोंको उत्पन्न किया। मनुष्य, किंनर, अनेक प्रकारके मत्स्य, वराह, पक्षी, हाथी, घोड़े, पशु, मृग, कृमि, कीट, पतंग आदि छोटे-बड़े जीवोंको उत्पन्न किया। इस प्रकार उन भास्करदेवने त्रिलोकीकी रचना की।

हे राजन्! इस सृष्टिकी रचना कर सृष्टिमें जिन-जिन जीवोंका जो-जो कर्म और क्रम कहा गया है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनें।

हाथी, व्याल, मृग और विविध पशु, पिशाच, मनुष्य तथा राक्षस आदि जरायुज (गर्भसे उत्पन्न होनेवाले) प्राणी हैं। मत्स्य, कछुवे, सर्प, मगर

तथा अनेक प्रकारके पक्षी अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले) हैं। मक्खी, मच्छर, जूँ, खटमल आदि जीव स्वेदज हैं अर्थात् पसीनेकी उष्मासे उत्पन्न होते हैं। भूमिको उद्देदकर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, ओषधियाँ आदि उद्भिज्ज सृष्टि हैं। जो फलके पकनेतक रहें और पीछे सूख जायँ या नष्ट हो जायँ तथा बहुत फूल और फलवाले वृक्ष हैं वे ओषधि कहलाते हैं और जो पुष्पके आये बिना ही फलते हैं, वे वनस्पति हैं तथा जो फूलते और फलते हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं। इसी प्रकार गुल्म, वल्ली, वितान आदि भी अनेक भेद होते हैं। ये सब बीजसे अथवा काण्डसे अर्थात् वृक्षकी छोटी-सी शाखा काटकर भूमिमें गाड़ देनेसे उत्पन्न होते हैं। ये वृक्ष आदि भी चेतना-शक्तिसम्पन्न हैं और इन्हें सुख-दुःखका ज्ञान रहता है, परंतु पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण तमोगुणसे आच्छन्न रहते हैं, इसी कारण मनुष्योंकी भाँति बातचीत आदि करनेमें समर्थ नहीं हो पाते^२।

इस प्रकार यह अचिन्त्य चराचर-जगत् भगवान् भास्करसे उत्पन्न हुआ है। जब वह परमात्मा निद्राका आश्रय ग्रहण कर शयन करता है, तब यह संसार उसमें लीन हो जाता है और जब निद्राका त्याग करता है अर्थात् जागता है, तब सब सृष्टि उत्पन्न होती है और समस्त जीव पूर्वकर्मानुसार अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वह अव्यय परमात्मा सम्पूर्ण चराचर संसारको जाग्रत् और शयन दोनों अवस्थाओंद्वारा बार-बार उत्पन्न और विनष्ट करता रहता है।

परमेश्वर कल्पके प्रारम्भमें सृष्टि और कल्पके

१-यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम् । अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि भारत ॥

निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात् कुरुकुलोद्बह । तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः ॥ (ब्राह्मपर्व २। ५६-५७)

२-ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः । अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥

पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥

अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः । (ब्राह्मपर्व २। ७३-७६)

अन्तमें प्रलय करते हैं। कल्प परमेश्वरका दिन है। इस कारण परमेश्वरके दिनमें सृष्टि और रात्रिमें प्रलय होता है। हे राजा शतानीक! अब आप काल-गणनाको सुनें—

अठारह निमेष (पलक गिरनेके समयको निमेष कहते हैं) की एक काष्ठा होती है अर्थात् जितने समयमें अठारह बार पलकोंका गिरना हो, उतने कालको काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक क्षण, बारह क्षणका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात, तीस दिन-रातका एक महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु, तीन ऋतुका एक अयन तथा दो अयनोंका एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्यभगवान्‌के द्वारा दिन-रात्रिका काल-विभाग होता है। सम्पूर्ण जीव रात्रिको विश्राम करते हैं और दिनमें अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं।

पितरोंका दिन-रात मनुष्योंके एक महीनेके बराबर होता है अर्थात् शुक्ल पक्षमें पितरोंकी रात्रि और कृष्ण पक्षमें दिन होता है। देवताओंका एक अहोरात्र (दिन-रात) मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है अर्थात् उत्तरायण दिन तथा दक्षिणायन रात्रि कही जाती है। हे राजन्! अब आप ब्रह्माजीके रात-दिन और एक-एक युगके प्रमाणको सुनें— सत्ययुग चार हजार वर्षका है, उसके संध्यांशके चार सौ वर्ष तथा संध्याके चार सौ वर्ष मिलाकर

इस प्रकार चार हजार आठ सौ दिव्य वर्षोंका एक सत्ययुग होता है*। इसी प्रकार त्रेतायुग तीन हजार वर्षोंका तथा संध्या और संध्यांशके छः सौ वर्ष कुल तीन हजार छः सौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्षोंका संध्या तथा संध्यांशके चार सौ वर्ष कुल दो हजार चार सौ वर्ष तथा कलियुग एक हजार वर्ष तथा संध्या और संध्यांशके दो सौ वर्ष मिलाकर बारह सौ वर्षोंके मानका होता है। ये सब दिव्य वर्ष मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते हैं। यही देवताओंका एक युग कहलाता है।

देवताओंके हजार युग होनेसे ब्रह्माजीका एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी रात्रिका है। जब ब्रह्माजी अपनी रात्रिके अन्तमें सोकर उठते हैं तब सत्-असत्-रूप मनको उत्पन्न करते हैं। वह मन सृष्टि करनेकी इच्छासे विकारको प्राप्त होता है, तब उससे प्रथम आकाशतत्त्व उत्पन्न होता है। आकाशका गुण शब्द कहा गया है। विकारयुक्त आकाशसे सब प्रकारके गन्धको वहन करनेवाले पवित्र वायुकी उत्पत्ति होती है, जिसका गुण स्पर्श है। इसी प्रकार विकारवान् वायुसे अन्धकारका नाश करनेवाला प्रकाशयुक्त तेज उत्पन्न होता है, जिसका गुण रूप है। विकारवान् तेजसे जल, जिसका गुण रस है और जलसे गन्धगुणवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सृष्टिका क्रम चलता रहता है।

* एक संक्रान्तिसे दूसरी सूर्य-संक्रान्तिकके समयको सौर मास कहते हैं। बारह सौर मासोंका एक सौर वर्ष होता है और मनुष्य-मानका यही एक सौर वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है। ऐसे ही तीस अहोरात्रोंका एक मास और बारह मासोंका एक दिव्य वर्ष होता है।

दोनों संध्याओंसहित युगोंका मान	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
१-सत्ययुगका मान	४,८००	१७,२८,०००
२-त्रेतायुगका मान	३,६००	१२,९६,०००
३-द्वापरयुगका मान	२,४००	८,६४,०००
४-कलियुगका मान	१,२००	४,३२,०००
महायुग या एक चतुर्युगी—	१२,०००	४३,२०,००० वर्ष

पूर्वमें बारह हजार दिव्य वर्षोंका जो एक दिव्य युग बताया गया है, वैसे ही एकहत्तर युग होनेसे एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं।

सत्ययुगमें धर्मके चारों पाद वर्तमान रहते हैं अर्थात् सत्ययुगमें धर्म चारों चरणोंसे (अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण) रहता है। फिर त्रेता आदि युगोंमें धर्मका बल घटनेसे धर्म क्रमसे एक-एक चरण घटता जाता है, अर्थात् त्रेतामें धर्मके तीन चरण, द्वापरमें दो चरण तथा कलियुगमें धर्मका एक ही चरण बचा रहता है और तीन चरण अधर्मके रहते हैं। सत्ययुगके मनुष्य धर्मात्मा, नीरोग, सत्यवादी होते हुए चार सौ वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। फिर त्रेता आदि युगोंमें इन सभी वर्षोंका एक चतुर्थांश न्यून हो जाता है, यथा त्रेताके मनुष्य तीन सौ वर्ष, द्वापरके दो सौ वर्ष तथा कलियुगके एक सौ वर्षतक जीवन धारण करते हैं। इन चारों युगोंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान धर्म माना गया है।

परम द्युतिमान् परमेश्वरने सृष्टिकी रक्षाके लिये अपने मुख, भुजा, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया और उनके लिये अलग-अलग कर्मोंकी कल्पना की। ब्राह्मणोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना—ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना तथा प्रजाओंका पालन आदि कर्म क्षत्रियोंके लिये नियत किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओंकी रक्षा करना, खेती-व्यापारसे धनार्जन करना—ये काम वैश्योंके लिये निर्धारित किये गये और इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना—यह एक मुख्य कर्म शूद्रोंका नियत किया गया है।

पुरुषकी देहमें नाभिसे ऊपरका भाग अत्यन्त पवित्र माना गया है। उसमें भी मुख प्रधान है। ब्राह्मण ब्रह्माके मुख (उत्तमाङ्ग)—से उत्पन्न हुआ है, इसलिये ब्राह्मण सबसे उत्तम हैं, यह वेदकी वाणी है। ब्रह्माजीने बहुत कालतक तपस्या करके सबसे पहले देवता और पितरोंको हव्य तथा कव्य पहुँचानेके लिये और सम्पूर्ण संसारकी रक्षा करने-हेतु ब्राह्मणको उत्पन्न किया। शिरोभागसे उत्पन्न होने और वेदको धारण करनेके कारण सम्पूर्ण संसारका स्वामी धर्मतः ब्राह्मण ही है। सब भूतों (स्थावर-जङ्गमरूप पदार्थों)—में प्राणी (कीट आदि) श्रेष्ठ हैं, प्राणियोंमें बुद्धिसे व्यवहार करनेवाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं। बुद्धि रखनेवाले जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि और कृतबुद्धियोंमें कर्म करनेवाले तथा इनसे ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणका जन्म धर्म-सम्पादन करनेके लिये है और धर्माचरणसे ब्राह्मण ब्रह्मत्व तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे महामुने! ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ हैं, फिर ब्राह्मणमें कौनसे ऐसे गुण होते हैं, जिनके कारण वह इन्हें प्राप्त करता है। कृपाकर आप इसका वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! आपने बहुत ही उत्तम बात पूछी है, मैं आपको वे बातें बताता हूँ, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनें।

जिस ब्राह्मणके वेदादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट गर्भाधान, पुंसवन आदि अड़तालीस संस्कार विधिपूर्वक हुए हों, वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। संस्कार ही ब्रह्मत्व-प्राप्तिका मुख्य कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजा शतानीकने पूछा—महात्मन्! वे संस्कार कौनसे हैं, इस विषयमें मुझे महान् कौतूहल हो रहा है। कृपाकर आप इन्हें बतायें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! वेदादि शास्त्रोंमें जिन संस्कारोंका निर्देश हुआ है, उनका मैं वर्णन करता हूँ—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, चार प्रकारके वेदव्रत, वेदस्नान, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (जिनसे देवता, पितरों, मनुष्य, भूत और ब्रह्मकी तृप्ति होती है), सप्तपाकयज्ञ-संस्था—अष्टकाद्वय, पार्वण, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री (शूलगव) तथा आश्वयुजी, सप्तहविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, निरूढ-पशुबन्ध, सौत्रामणी और सप्तसोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आसौर्याम—ये चालीस ब्राह्मणके संस्कार हैं। इनके साथ ही ब्राह्मणमें आठ आत्मगुण भी अवश्य होने चाहिये, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। ये आठ गुण इस प्रकार हैं—

अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम्।

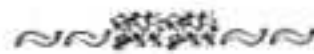
अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह॥

(ब्राह्मपर्व २।१५५)

‘अनसूया (दूसरोंके गुणोंमें दोष-बुद्धि नहीं रखना), दया, क्षमा, अनायास (किसी सामान्य बातके पीछे जानकी बाजी न लगाना), मङ्गल (माङ्गलिक वस्तुओंका धारण), अकार्पण्य (दीन वचन नहीं बोलना और अत्यन्त कृपण न बनना), शौच (बाह्याभ्यन्तरकी शुद्धि) और

अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण हैं।’ इनकी पूरी परिभाषा इस प्रकार है—

गुणीके गुणोंको न छिपाना अर्थात् प्रकट करना, अपने गुणोंको प्रकट न करना तथा दूसरेके दोषोंको देखकर प्रसन्न न होना अनसूया है। अपने-परायेमें, मित्र और शत्रुमें अपने समान व्यवहार करना और दूसरेका दुःख दूर करनेकी इच्छा रखना दया है। मन, वचन अथवा शरीरसे कोई दुःख भी पहुँचाये तो उसपर क्रोध और वैर न करना क्षान्ति है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करना, निन्दित पुरुषोंका सङ्ग न करना और सदाचरणमें स्थित रहना शौच कहा जाता है। जिन शुभ कर्मोंके करनेसे शरीरको कष्ट होता है, उस कर्मको हठात् नहीं करना चाहिये, यह अनायास है। नित्य अच्छे कार्योंको करना और बुरे कर्मोंका परित्याग करना—यह मङ्गल-गुण कहलाता है। बड़े कष्ट एवं परिश्रमसे न्यायोपार्जित धनसे उदारतापूर्वक थोड़ा-बहुत नित्य दान करना अकार्पण्य है। ईश्वरकी कृपासे प्राप्त थोड़ी-सी सम्पत्तिमें भी संतुष्ट रहना और दूसरेके धनकी किंचित् भी इच्छा न रखना अस्पृहा है*। इन आठ गुणों और पूर्वोक्त संस्कारोंसे जो ब्राह्मण संस्कृत हो वह ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। जिसकी गर्भ-शुद्धि हो, सब संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हों और वह वर्णाश्रम-धर्मका पालन करता हो तो उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है। (अध्याय १-२)



* न गुणान् गुणिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि । प्रहृष्यते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता ॥

अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा । आत्मवद्वर्तनं यत् स्यात् सा दया परिकीर्तिता ॥

वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च । न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः । आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत् प्रकीर्तितम् ॥

शरीरं पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा । अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥

स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना । अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते ॥

यथोत्पन्नेन संतुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना । अहिंसया परस्वेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥ (ब्राह्मपर्व २।१५७—१६४)

गर्भाधानसे यज्ञोपवीतपर्यन्त संस्कारोंकी संक्षिप्त विधि, अन्नप्राशन तथा भोजन-विधिके प्रसंगमें धनवर्धनकी कथा, हाथोंके तीर्थ एवं आचमन-विधि

राजा शतानीकने कहा—हे मुने! आपने मुझे जातकमादि संस्कारोंके विषयमें बताया, अब आप इन संस्कारोंके लक्षण तथा चारों वर्ण एवं आश्रमके धर्म बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके करनेसे द्विजातियोंके बीज-सम्बन्धी तथा गर्भ-सम्बन्धी सभी दोष निवृत्त हो जाते हैं। वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य व्रत, देवर्षि-पितृ-तर्पण, पुत्रोत्पादन, पञ्च महायज्ञ और ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके द्वारा यह शरीर ब्रह्म-प्राप्तिके योग्य हो जाता है। अब इन संस्कारोंकी विधिको आप संक्षेपमें सुनें—

पुरुषका जातकर्म-संस्कार नालच्छेदनसे पहिले किया जाता है। इसमें वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक बालकको सुवर्ण, मधु और घृतका प्राशन कराया जाता है। दसवें दिन, बारहवें दिन, अठारहवें दिन अथवा एक मास पूरा होनेपर शुभ तिथि-मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें नामकरण-संस्कार किया जाता है। ब्राह्मणका नाम मङ्गलवाचक रखना चाहिये, जैसे शिवशर्मा। क्षत्रियका बलवाचक जैसे इन्द्रवर्मा। वैश्यका धनयुक्त जैसे धनवर्धन और शूद्रका भी यथाविधि देवदासादि नाम रखना चाहिये। स्त्रियोंका नाम ऐसा रखना चाहिये, जिसके बोलनेमें कष्ट न हो, क्रूर न हो, अर्थ स्पष्ट और अच्छा हो, जिसके सुननेसे मन प्रसन्न हो तथा मङ्गलसूचक एवं आशीर्वादयुक्त हो और जिसके अन्तमें आकार, ईकार आदि दीर्घ स्वर हों। जैसे यशोदादेवी आदि।

जन्मसे बारहवें दिन अथवा चतुर्थ मासमें

बालकको घरसे बाहर निकालना चाहिये, इसे निष्क्रमण कहते हैं। छठे मासमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। पहले या तीसरे वर्षमें मुण्डन-संस्कार करना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत-संस्कार करना चाहिये। परंतु ब्रह्मतेजकी इच्छावाला ब्राह्मण पाँचवें वर्षमें, बलकी इच्छावाला क्षत्रिय छठे वर्षमें और धनकी कामनावाला वैश्य आठवें वर्षमें अपने-अपने बालकोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न करे। सोलह वर्षतक ब्राह्मण, बाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्री (सावित्री)-के अधिकारी रहते हैं, इसके अनन्तर यथासमय संस्कार न होनेसे गायत्रीके अधिकारी नहीं रहते और वे 'व्रात्य' कहलाते हैं। फिर जबतक व्रात्यस्तोम नामक यज्ञसे उनकी शुद्धि नहीं की जाती, तबतक उनका शरीर गायत्री-दीक्षाके योग्य नहीं बनता। इन व्रात्योंके साथ आपत्तिमें भी वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन अथवा विवाह आदिका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

त्रैवर्णिक ब्रह्मचारियोंको उत्तरीयके रूपमें क्रमशः कृष्ण (कस्तूरी)-मृगचर्म, रुरु नामक मृगका चर्म और बकरेका चर्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः सन (टाट), अलसी और भेड़के ऊनका वस्त्र धारण करना चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मचारीके लिये तीन लड़ीवाली सुन्दर चिकनी मूँजकी, क्षत्रियके लिये मूर्वा (मुरा)-की और वैश्यके लिये सनकी मेखला कही गयी है। मूँज आदिके प्राप्त न होनेपर क्रमशः कुशा, अश्मन्तक और बल्वज नामक

तृणकी मेखलाको तीन लड़ीवाली करके एक, तीन अथवा पाँच ग्रन्थियाँ उसमें लगानी चाहिये। ब्राह्मण कपासके सूतका, क्षत्रिय सनके सूतका और वैश्य भेड़के ऊनका यज्ञोपवीत धारण करे। ब्राह्मण बिल्व, पलाश या प्लक्षका दण्ड, जो सिरपर्यन्त हो उसे धारण करे। क्षत्रिय बड़, खदिर या बेंतके काष्ठका मस्तकपर्यन्त ऊँचा और वैश्य पैलव (पीलू वृक्षकी लकड़ी), गूलर अथवा पीपलके काष्ठका दण्ड नासिकापर्यन्त ऊँचा धारण करे। ये दण्ड सीधे, छिद्ररहित और सुन्दर होने चाहिये। यज्ञोपवीत-संस्कारमें अपना-अपना दण्ड धारणकर भगवान् सूर्यनारायणका उपस्थान करे और गुरुकी पूजा करे तथा नियमके अनुसार सर्वप्रथम माता, बहिन या मौसीसे भिक्षा माँगे। भिक्षा माँगते समय उपनीत ब्राह्मण वटु भिक्षा देनेवालीसे 'भवति! भिक्षां मे देहि', क्षत्रिय 'भिक्षां भवति! मे देहि' तथा वैश्य 'भिक्षां देहि मे भवति!'—इस प्रकारसे 'भवति' शब्दका प्रयोग करे। भिक्षामें वे सुवर्ण, चाँदी अथवा अन्न ब्रह्मचारीको दें। इस प्रकार भिक्षा ग्रहणकर ब्रह्मचारी उसे गुरुको निवेदित कर दे और गुरुकी आज्ञा पाकर पूर्वाभिमुख हो आचमन कर भोजन करे। पूर्वकी ओर मुख करके भोजन करनेसे आयु, दक्षिण-मुख करनेसे यश, पश्चिम-मुख करनेसे लक्ष्मी और उत्तर-मुख करके भोजन करनेसे सत्यकी अभिवृद्धि होती है। एकाग्रचित्त हो उत्तम अन्नका भोजन करनेके अनन्तर आचमन कर अङ्गों (आँख, कान, नाक)—का जलसे स्पर्श करे। अन्नकी नित्य स्तुति करनी चाहिये और अन्नकी निन्दा किये बिना भोजन करना चाहिये। उसका दर्शन कर संतुष्ट एवं प्रसन्न होना चाहिये। हर्षसे भोजन करना

चाहिये। पूजित अन्नके भोजनसे बल और तेजकी वृद्धि होती है और निन्दित अन्नके भोजनसे बल और तेज दोनोंकी हानि होती है*। इसीलिये सर्वदा उत्तम अन्नका भोजन करना चाहिये। उच्छिष्ट (जूठा) किसीको नहीं देना चाहिये तथा स्वयं भी किसीका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये। भोजन करके जिस अन्नको छोड़ दे उसे फिर ग्रहण न करे अर्थात् बार-बार छोड़-छोड़कर भोजन न करे, एक बार बैठकर तृप्तिपूर्वक भोजन कर लेना चाहिये। जो पुरुष बीच-बीचमें विच्छेद करके लोभवश भोजन करता है, उसके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं, जैसे धनवर्धन वैश्यके हुए थे।

राजा शतानीकने पूछा—महाराज! आप धनवर्धन वैश्यकी कथा सुनाइये। उसने कैसा भोजन किया और उसका क्या परिणाम हुआ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! सत्ययुगकी बात है, पुष्करक्षेत्रमें धन-धान्यसे सम्पन्न धनवर्धन नामक एक वैश्य रहता था। एक दिन वह ग्रीष्म-ऋतुमें मध्याह्नके समय वैश्वदेव-कर्म सम्पन्न कर अपने पुत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन कर रहा था। इतनेमें ही अकस्मात् उसे बाहरसे एक करुण शब्द सुनायी पड़ा। उस शब्दको सुनते ही वह दयावश भोजनको छोड़कर बाहरकी ओर दौड़ा। किंतु जबतक वह बाहर पहुँचा वह आवाज बंद हो गयी। फिर लौटकर उस वैश्यने पात्रमें जो छोड़ा हुआ भोजन था उसे खा लिया। भोजन करते ही उस वैश्यकी मृत्यु हो गयी और इसी अपराधवश परलोकमें भी उसकी दुर्गति हुई। इसलिये छोड़े हुए भोजनको फिर कभी नहीं खाना चाहिये। अधिक भोजन भी नहीं करना चाहिये। इससे शरीरमें

* तथात्रं पूजयेन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दर्शनात् तस्य हृष्येद् वै प्रसीदेच्चापि भारत ॥

पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति ॥

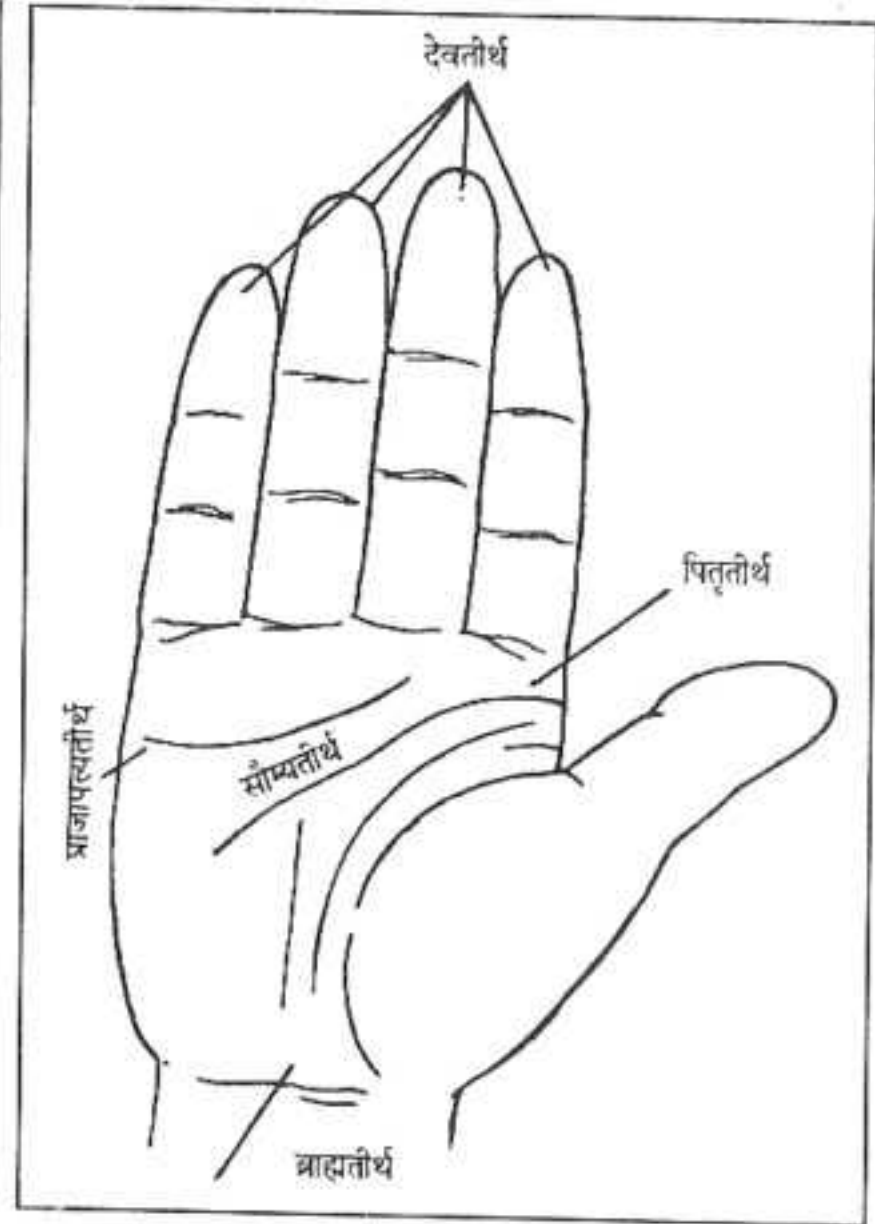
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्। (ब्राह्मपर्व ३। ३७—३९)

अत्यधिक रसकी उत्पत्ति होती है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम, मन्दाग्रि, ज्वर) आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अजीर्ण हो जानेसे स्नान, दान, तप, होम, तर्पण, पूजा आदि कोई भी पुण्य कर्म ठीकसे सम्पन्न नहीं हो पाते। अति भोजन करनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं—आयु घटती है, लोकमें निन्दा होती है तथा अन्तमें सद्गति भी नहीं होती। उच्छिष्ट मुखसे कहीं नहीं जाना चाहिये। सदा पवित्रतासे रहना चाहिये। पवित्र मनुष्य यहाँ सुखसे रहता है और अन्तमें स्वर्गमें जाता है।

राजाने पूछा—मुनीश्वर! ब्राह्मण किस कर्मके करनेसे पवित्र होता है? इसका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो ब्राह्मण विधिपूर्वक आचमन करता है, वह पवित्र हो जाता है और सत्कर्मोंका अधिकारी हो जाता है। आचमनकी विधि यह है कि हाथ-पाँव धोकर पवित्र स्थानमें आसनके ऊपर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। दाहिने हाथको जानुके भीतर रखकर दोनों चरण बराबर रखे तथा शिख्रामें ग्रन्थि लगाये और फिर उष्णता एवं फेनसे रहित शीतल एवं निर्मल जलसे आचमन करे। खड़े-खड़े, बात करते, इधर-उधर देखते हुए, शीघ्रतासे और क्रोधयुक्त होकर आचमन न करे।

हे राजन्! ब्राह्मणके दाहिने हाथमें पाँच तीर्थ कहे गये हैं—(१) देवतीर्थ, (२) पितृतीर्थ, (३) ब्राह्मतीर्थ, (४) प्राजापत्यतीर्थ और (५) सौम्यतीर्थ। अब आप इनके लक्षणोंको सुनें—अँगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, कनिष्ठाके मूलमें प्राजापत्यतीर्थ, अङ्गुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ, तर्जनी और अङ्गुष्ठके बीचमें पितृतीर्थ और हाथके मध्य-भागमें सौम्यतीर्थ



कहा जाता है, जो देवकर्ममें प्रशस्त माना गया है*। देवार्चा, ब्राह्मणको दक्षिणा आदि कर्म देवतीर्थसे; तर्पण, पिण्डदानादि कर्म पितृतीर्थसे; आचमन ब्राह्मतीर्थसे; विवाहके समय लाजाहोमादि और सोमपान प्राजापत्यतीर्थसे; कमण्डलुग्रहण, दधिप्राशनादि कर्म सौम्यतीर्थसे करे। ब्राह्मतीर्थसे उपस्पर्शन सदा श्रेष्ठ माना गया है।

अङ्गुलियोंको मिलाकर एकाग्रचित्त हो, पवित्र जलसे बिना शब्द किये तीन बार आचमन करनेसे महान् फल होता है और देवता प्रसन्न होते हैं। प्रथम आचमनसे ऋग्वेद, द्वितीयसे यजुर्वेद और तृतीयसे सामवेदकी तृप्ति होती है तथा आचमन करके जलयुक्त दाहिने अँगूठेसे मुखका स्पर्श करनेसे अथर्ववेदकी तृप्ति होती है। ओष्ठके मार्जनसे इतिहास और पुराणोंकी तृप्ति होती है। मस्तकमें अभिषेक करनेसे भगवान्

* अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते ॥

ब्राह्मं तीर्थं वदन्येतद्वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः । कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुल्यग्रे तु दैवतम् ॥

तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ॥ (ब्राह्मपर्व ३।६३-६५)

रुद्र प्रसन्न होते हैं। शिखाके स्पर्शसे ऋषिगण, दोनों आँखोंके स्पर्शसे सूर्य, नासिकाके स्पर्शसे वायु, कानोंके स्पर्शसे दिशाएँ, भुजाके स्पर्शसे यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा अग्निदेव तृप्त होते हैं। नाभि और प्राणोंकी ग्रन्थियोंके स्पर्श करनेसे सभी तृप्त हो जाते हैं। पैर धोनेसे विष्णुभगवान्, भूमिमें जल छोड़नेसे वासुकि आदि नाग तथा बीचमें जो जलबिन्दु गिरते हैं, उनसे चार प्रकारके भूतग्रामकी तृप्ति होती है।

अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे नेत्र, अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे नासिका, अङ्गुष्ठ एवं मध्यमासे मुख, अङ्गुष्ठ और कनिष्ठकासे कान, सब अङ्गुलियोंसे भुजाओंका, अङ्गुष्ठसे नाभिमण्डल तथा सभी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये। अङ्गुष्ठ अग्निरूप है, तर्जनी वायुरूप, मध्यमा प्रजापतिरूप, अनामिका सूर्यरूप और कनिष्ठिका इन्द्ररूप है^१।

इस विधिसे ब्राह्मणके आचमन करनेपर सम्पूर्ण जगत्, देवता और लोक तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण सदा पूजनीय है, क्योंकि वह सर्वदेवमय है।

ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ अथवा देवतीर्थसे आचमन करे, परंतु पितृतीर्थसे कभी भी आचमन नहीं करना चाहिये। आचमनका जल हृदयतक

जानेसे ब्राह्मणकी, कण्ठतक जानेसे क्षत्रियकी और वैश्यकी जलके प्राशनसे तथा शूद्रकी जलके स्पर्शमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

दाहिने हाथके नीचे और बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रहनेसे द्विज उपवीती (सव्य) कहलाता है, इसके विलोम रहनेसे अर्थात् यज्ञोपवीतके दाहिने कंधेसे बायीं ओर रहनेसे प्राचीनावीती (अपसव्य) तथा गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत रहनेसे निवीती कहा जाता है।

मेखला, मृगछाला, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—इनमें कोई भी चीज भग्न हो जाय तो उसे जलमें विसर्जित कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूसरा धारण करना चाहिये। उपवीती (सव्य) होकर और दाहिने हाथको जानु अर्थात् घुटनेके भीतर रखकर जो ब्राह्मण आचमन करता है वह पवित्र हो जाता है। ब्राह्मणके हाथकी रेखाओंको गङ्गा आदि नदियोंके समान पवित्र समझना चाहिये और अङ्गुलियोंके जो पर्व हैं, वे हिमालय आदि देवपर्वत माने जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणका दाहिना हाथ सर्वदेवमय है और इस विधिसे आचमन करनेवाला अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त करता है^२। (अध्याय ३)



वेदाध्ययन-विधि, ओंकार तथा गायत्री-माहात्म्य, आचार्यादि-लक्षण, ब्रह्मचारिधर्म-निरूपण, अभिवादन-विधि, स्नातककी महिमामें अङ्गिरापुत्रका आख्यान, माता-पिता और गुरुकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! ब्राह्मणका केशान्त (समावर्तन)—संस्कार सोलहवें वर्षमें, क्षत्रियका बाईसवें वर्षमें तथा वैश्यका पचीसवें वर्षमें करना चाहिये। स्त्रियोंके संस्कार अमन्त्रक करने चाहिये।

केशान्त-संस्कार होनेके अनन्तर चाहे तो गुरु-गृहमें रहे अथवा अपने घरमें आकर विवाह कर अग्निहोत्र ग्रहण करे। स्त्रियोंके लिये मुख्य संस्कार विवाह है।

१- अङ्गुष्ठोऽग्निर्महाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी ॥

अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा मघवा विभो। प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेया तस्माद् भरतसत्तम ॥ (ब्राह्मपर्व ३।८४-८५)

२- यास्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत ॥

गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भरतसत्तम। यान्यङ्गुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै ॥

सर्वदेवमयो राजन् करो विप्रस्य दक्षिणः।

(ब्राह्मपर्व ३।९२-९४)

राजन्! यहाँतक मैंने उपनयनका विधान बतलाया। अब आगेका कर्म बताते हैं, उसे आप सुनें। शिष्यका यज्ञोपवीत कर गुरु पहले उसको शौच, आचार, संध्योपासन, अग्निकार्य सिखाये और वेदका अध्ययन कराये। शिष्य भी आचमन कर उत्तराभिमुख हो ब्रह्माञ्जलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो प्रसन्न-मनसे वेदाध्ययनके लिये बैठे। पढ़नेके आरम्भ तथा अन्तमें गुरुके चरणोंकी वन्दना करे। पढ़नेके समय दोनों हाथोंकी जो अञ्जलि बाँधी जाती है, उसे 'ब्रह्माञ्जलि' कहा जाता है। शिष्य गुरुका दाहिना चरण दाहिने हाथसे और बायाँ चरण बायें हाथसे छूकर उनको प्रणाम करे। वेदके पढ़नेके समय आदिमें और अन्तमें ओंकारका उच्चारण न करनेसे सब निष्फल हो जाता है। पहलेका पढ़ा हुआ विस्मृत हो जाता है और आगेका विषय याद नहीं होता।

पूर्वदिशामें अग्रभागवाले कुशाके आसनपर बैठकर पवित्री धारण करे तथा तीन बार प्राणायामसे पवित्र होकर ओंकारका उच्चारण करे। प्रजापतिने तीनों वेदोंके प्रतिनिधिभूत अकार, उकार और मकार—इन तीन वर्णोंको तीनों वेदोंसे निकाला है, इनसे ओंकार बनता है। भूर्भुवः स्वः—ये तीनों व्याहृतियाँ और गायत्रीके तीन पाद तीनों वेदोंसे निकले हैं। इसलिये जो ब्राह्मण ओंकार तथा व्याहृतिपूर्वक त्रिपदा गायत्रीका दोनों संध्याओंमें जप करता है, वह वेदपाठके पुण्यको प्राप्त करता है और जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी क्रियासे हीन होते हैं, उनकी साधु पुरुषोंमें निन्दा होती है तथा परलोकमें भी वे कल्याणके भागी नहीं होते, इसलिये अपने कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रणव, तीन व्याहृतियाँ और त्रिपदा गायत्री—ये सब मिलकर जो मन्त्र गायत्री-मन्त्र होता है, वह ब्रह्माका मुख है। जो इस गायत्री-मन्त्रका श्रद्धा-

भक्तिसे तीन वर्षतक नित्य नियमसे विधिपूर्वक जप करता है, वह वायुकी तरह वेगसम्पन्न होकर आकाशके स्वरूपको धारणकर ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त करता है। एकाक्षर 'ॐ' परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री)—से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है और मौनसे सत्य बोलना श्रेष्ठ है। तपस्या, हवन, दान, यज्ञादि क्रियाएँ स्वरूपतः नाशवान् हैं, किंतु प्रणव-स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ओंकारका कभी नाश नहीं होता। विधियज्ञों (दर्श-पौर्णमास आदि)—से जपयज्ञ (प्रणवादि-जप) सदा ही श्रेष्ठ है। उपांशु-जप (जिस जपमें केवल ओठ और जीभ चलते हैं, शब्द न सुनायी पड़े) लाख गुना और उपांशु-जपसे मानस-जप हजार गुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो पाकयज्ञ (पितृकर्म, हवन, बलिवैश्वदेव) विधि-यज्ञके बराबर हैं, वे सभी जप-यज्ञकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। ब्राह्मणको सब सिद्धि जपसे प्राप्त हो जाती है और कुछ करे या न करे, पर ब्राह्मणको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

सूर्योदयसे पूर्व जब तारे दिखायी देते रहें तभीसे प्रातः-संध्या आरम्भ कर देनी चाहिये और सूर्योदयपर्यन्त गायत्री-जप करता रहे। इसी प्रकार सूर्यास्तसे पहिले ही सायं-संध्या आरम्भ करे और तारोंके दिखायी देनेतक गायत्री-जप करता रहे। प्रातः-संध्यामें खड़े होकर जप करनेसे रात्रिके पाप नष्ट होते हैं और सायं-संध्याके समय बैठकर गायत्री-जप करनेसे दिनके पाप नष्ट होते हैं। इसलिये दोनों कालोंकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो दोनों संध्याओंको नहीं करता उसे सम्पूर्ण द्विजातिके विहित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देना चाहिये। घरके बाहर एकान्त-स्थानमें, अरण्य या नदी-सरोवर आदिके तटपर गायत्रीका जप करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्त्रोंके जप, संध्याके मन्त्र और जो

ब्रह्म-यज्ञादि नित्यकर्म हैं, इनके मन्त्रोंके उच्चारणमें अनध्यायका विचार नहीं करना चाहिये अर्थात् नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं होता।

यज्ञोपवीतके अनन्तर समावर्तन-संस्कारतक शिष्य गुरुके घरमें रहे। भूमिपर शयन करे, सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करे और वेदाध्ययन करता रहे। सब कुछ जानते हुए भी जडवत् रहे। आचार्यका पुत्र, सेवा करनेवाला, ज्ञान देनेवाला, धार्मिक, पवित्र, विश्वासी, शक्तिमान्, उदार, साधुस्वभाव तथा अपनी जातिवाला—ये दस अध्यापनके योग्य हैं। बिना पूछे किसीसे कुछ न कहे, अन्यायसे पूछनेवालेको कुछ न बताये। जो अनुचित ढंगसे पूछता है और जो अनुचित ढंगसे उत्तर देता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं और जगत्में सबके अप्रिय होते हैं। जिसको पढ़ानेसे धर्म या अर्थकी प्राप्ति न हो और वह कुछ सेवा-शुश्रूषा भी न करे, ऐसेको कभी न पढ़ाये, क्योंकि ऐसे विद्यार्थीको दी गयी विद्या ऊषरमें बीज-वपनके समान निष्फल होती है। विद्याके अधिष्ठातृ-देवताने ब्राह्मणसे कहा—‘मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी भलीभाँति रक्षा करो, मुझे ब्राह्मणों (अध्यापकों)-के गुणोंमें दोष-बुद्धि रखनेवालेको और द्वेष करनेवालेको न देना, इससे मैं बलवती रहूँगी। जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय, पवित्र, ब्रह्मचारी और प्रमादसे रहित हो उसे मुझे देना।’

जो गुरुकी आज्ञाके बिना वेद-शास्त्र आदिको स्वयं ग्रहण करता है, वह अति भयंकर रौरव नरकको प्राप्त होता है। जो लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान दे, उसे सर्वप्रथम प्रणाम करना चाहिये। जो केवल गायत्री जानता हो, पर शास्त्रकी मर्यादामें रहे वह सबसे उत्तम है, किंतु सभी वेदादि शास्त्रोंको जानते हुए भी मर्यादामें न रहे और भक्ष्याभक्ष्यका कुछ भी विचार न करे तथा सभी वस्तुओंको बेचे, वह अधम है।

गुरुके आगे, शय्या अथवा आसनपर न बैठे। यदि पहिलेसे बैठा हो तो गुरुको आते देख नीचे उतर जाय और उनका अभिवादन करे। वृद्धजनोंको आते देख छोटोंके प्राण उच्छ्वसित हो जाते हैं, इसलिये नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन्हें प्रणाम करनेसे वे प्राण पुनः अपने स्थानपर आ जाते हैं। प्रतिदिन बड़ोंकी सेवा और उन्हें प्रणाम करनेवाले पुरुषके आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों निरन्तर बढ़ते रहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम्॥

(ब्राह्मपर्व ४।५०)

अभिवादनके समय दूसरेकी स्त्रीको और जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो उसे भवती (आप), सुभगे अथवा भगिनी (बहन) कहकर सम्बोधित करे। चाचा, मामा, ससुर, ऋत्विक् और गुरु—इनको अपना नाम लेते हुए प्रणाम करना चाहिये। मौसी, मामी, सास, बुआ (पिताकी बहन) और गुरुकी पत्नी—ये सब मान्य एवं पूज्य हैं। बड़े भाईकी सवर्णा स्त्री (भाभी)—का जो नित्य आदर करता है और उसे माताके समान समझता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। पिताकी बहन, माताकी बहन और अपनी बड़ी बहन—ये तीनों माताके समान ही हैं। फिर भी अपनी माता—इन सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। पुत्र, मित्र और भानजा (बहनका लड़का) इनको अपने समान समझना चाहिये। धन-सम्पत्ति, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँचों महत्त्वके कारण हैं—इनमें उत्तरोत्तर एकसे दूसरा बड़ा है अर्थात् विद्या सर्वश्रेष्ठ है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥

(ब्राह्मपर्व ४।७०)

रथ आदि यानपर चढ़े हुए, अतिवृद्ध, रोगी, भारयुक्त, स्त्री, स्नातक (जिसका समावर्तन-संस्कार हो गया हो), राजा और वर (दूल्हा) यदि सामनेसे आते हों तो इन्हें मार्ग पहले देना चाहिये। ये सभी यदि एक साथ आते हों तो स्नातक और राजा मान्य हैं। इन दोनोंमेंसे भी स्नातक विशेष मान्य है^१।

जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन कराकर रहस्य (यज्ञ, विद्या और उपनिषद्) तथा कल्पसहित वेदाध्ययन कराता है, उसे आचार्य कहते हैं। जो जीविकाके निमित्त वेदका एक भाग अथवा वेदाङ्ग पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहलाता है। जो निषेक अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारोंको रीतिसे कराता है और अन्नादिसे पोषण करता है, उस ब्राह्मणको गुरु कहते हैं। जो अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, पाक-यज्ञादि कर्मोंका वरण लेकर जिसके निमित्त करता है, वह उसका ऋत्विक् कहलाता है। जो पुरुष वेद-ध्वनिसे दोनों कान भर देता है, उसे माता-पिताके समान समझकर उससे कभी द्वेष नहीं करना चाहिये।

उपाध्यायसे दस गुना गौरव आचार्यका और आचार्यसे सौ गुना पिताका तथा पितासे हजार गुना गौरव माताका होता है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।

सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

(ब्राह्मपर्व ४।७९)

जन्म देनेवाला और वेद पढ़ानेवाला—ये दोनों पिता हैं, किंतु इनमें भी वेदाध्ययन करानेवाला

श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मणका मुख्य जन्म तो वेद पढ़नेसे ही होता है। इसलिये उपाध्याय आदि जितने पूज्य हैं, उनमें सबसे अधिक गौरव महागुरुका ही होता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे मुने! आपने उपाध्याय आदिके लक्षण बताये, अब महागुरु किसे कहते हैं? यह भी बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो ब्राह्मण जयोपजीवी हो अर्थात् अष्टादशपुराण, रामायण, विष्णुधर्म, शिवधर्म, महाभारत (भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासद्वारा रचित महाभारत जो पञ्चम वेदके नामसे भी विख्यात है) तथा श्रौत एवं स्मार्त-धर्म (विद्वान् लोग इन सभीको 'जय' नामसे अभिहित करते हैं)—का ज्ञाता हो, वह महागुरु कहलाता है^२। वह सभी वर्णोंके लिये पूज्य है। जो शास्त्रद्वारा थोड़ा या बहुत उपकार करे, उसको भी उस उपकारके बदले गुरु मानना चाहिये। अवस्थामें चाहे छोटा क्यों न हो, पढ़ानेसे वह बालक वृद्धका भी पिता हो सकता है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन आख्यान सुनो—

पूर्वकालमें अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पति (बालक होनेपर भी) बड़े वृद्धोंको पढ़ाते थे और पढ़ानेके समय 'हे पुत्रो! पढ़ो' ऐसा कहते थे। बालकद्वारा 'पुत्र' सम्बोधन सुनकर उनको बड़ा क्षोभ हुआ और वे देवताओंके पास गये तथा उन्होंने सारा वृत्तान्त बतलाया। तब देवताओंने कहा—पितृगणो! उस बालकने न्यायोचित बात ही कही है, क्योंकि

१-चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः । स्नातकस्य तु राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥

एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ । आभ्यां समागमे राजन् स्नातको नृपमानभाक् ॥

(ब्राह्मपर्व ४।७२-७३)

२-जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुच्यते । अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥

विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत । कार्ष्णं वेदं पञ्चमं तु यन्महाभारतं स्मृतम् ॥

श्रौता धर्माश्च राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते । जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

(ब्राह्मपर्व ४।८६-८८)

जो अज्ञ हो अर्थात् कुछ न जानता हो वही सच्चे अर्थमें बालक है, किंतु जो मन्त्रको देनेवाला है (वेदोंको पढ़ानेवाला है), उपदेशक है, वह युवा आदि होनेपर भी पिता होता है। अवस्था अधिक होनेसे, केश श्वेत होनेसे और बहुत वित्त तथा बन्धु-बान्धवोंके होनेसे कोई बड़ा नहीं होता, बल्कि इस विषयमें ऋषियोंने यह व्यवस्था की है कि जो विद्यामें अधिक हो, वही सबसे महान् (वृद्ध) है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें क्रमशः ज्ञान, बल, धन तथा जन्मसे बड़प्पन होता है। सिरके बाल श्वेत हो जानेसे कोई वृद्ध नहीं होता, यदि कोई युवा भी वेदादि शास्त्रोंका भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर ले तो उसीको वृद्ध (महान्) समझना चाहिये। जैसे काष्ठसे बना हाथी, चमड़ेसे मढ़ा मृग किसी कामका नहीं, उसी प्रकार वेदसे हीन ब्राह्मणका जन्म निष्फल है। मूर्खको दिया हुआ दान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही वेदकी ऋचाओंको न जाननेवाले ब्राह्मणका जन्म निष्फल होता है। ऐसा ब्राह्मण नाममात्रका ब्राह्मण होता है। वेदोंका स्वयं कथन है कि जो हमें पढ़कर हमारा अनुष्ठान न करे, वह पढ़नेका व्यर्थ क्लेश उठाता है, इसलिये वेद पढ़कर वेदमें कहे हुए कर्मोंका जो अनुष्ठान करता है अर्थात् तदनुकूल आचरण करता है, उसीका वेद पढ़ना सफल है। जो वेदादि शास्त्रोंको जानकर धर्मका उपदेश करते हैं, वही उपदेश ठीक है, किंतु जो मूर्ख वेदादि शास्त्रोंको जाने बिना धर्मका उपदेश करते हैं, वे बड़े पापके भागी होते हैं। शौचरहित (अपवित्र), वेदसे रहित तथा नष्टव्रत ब्राह्मणको जो अन्न दिया जाता है, वह अन्न रोदन करता है कि 'मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो ऐसे मूर्ख ब्राह्मणके हाथ पड़ा'। तथा वही अन्न यदि

जयोपजीवीको दिया जाय तो प्रसन्नतासे नाच उठता है और कहता है कि 'मेरा अहोभाग्य है, जो मैं ऐसे पात्रके हाथ आया।' विद्या और तपके अभ्याससे सम्पन्न ब्राह्मणके घरमें आनेपर सभी अन्नादि ओषधियाँ अति प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि अब हमारी भी सद्गति हो जायगी। व्रत, वेद और जपसे हीन ब्राह्मणको दान नहीं देना चाहिये, क्योंकि पत्थरकी नाव नदीके पार नहीं उतार सकती। इसलिये श्रोत्रियको हव्य-कव्य देनेसे देवता और पितरोंकी तृप्ति होती है। घरके समीप रहनेवाले मूर्ख ब्राह्मणसे दूर रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको ही बुलाकर दान देना चाहिये। परंतु घरके समीप रहनेवाला ब्राह्मण यदि गायत्री भी जानता हो तो उसका परित्याग न करे। परित्याग करनेसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, क्योंकि ब्राह्मण चाहे निर्गुण हो या गुणवान्, परंतु यदि वह गायत्री जानता है तो वह परमदेव-स्वरूप है। जैसे अन्नसे रहित ग्राम, जलसे रहित कूप केवल नामधारक हैं, वैसे ही विद्याध्ययनसे रहित ब्राह्मण भी केवल नाममात्रका ब्राह्मण है।

प्राणियोंके कल्याणके लिये अहिंसा तथा प्रेमसे ही अनुशासन करना श्रेष्ठ है। धर्मकी इच्छा करनेवाले शासकको सदा मधुर तथा नम्र वचनोंका प्रयोग करना चाहिये। जिसके मन, वचन शुद्ध और सत्य हैं, वह वेदान्तमें कहे गये मोक्ष आदि फलोंको प्राप्त करता है। आर्त होनेपर भी ऐसा वचन कभी न कहे जिससे किसीकी आत्मा दुःखी हो और सुननेवालोंको अच्छा न लगे। दूसरेका अपकार करनेकी बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पुरुषको जैसा आनन्द मीठी वाणीसे मिलता है, वैसे आनन्द न चन्द्रकिरणोंसे मिलता है, न चन्दनसे, न शीतल छायासे और न शीतल जलसे*। ब्राह्मणको

* न तथा शशी न सलिलं न चन्दनरसो न शीतलच्छाया । प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी ॥ (ब्राह्मपर्व ४।१२८)

चाहिये कि सम्मानकी इच्छाको भयंकर विषके समान समझकर उससे डरता रहे और अपमानको अमृतके समान स्वीकार करे, क्योंकि जिसकी अवमानना होती है, उसकी कुछ हानि नहीं होती, वह सुखी ही रहता है और जो अवमानना करता है, वह विनाशको प्राप्त होता है। इसलिये तपस्या करता हुआ द्विज नित्य वेदका अभ्यास करे, क्योंकि वेदाभ्यास ही ब्राह्मणका परम तप है।

ब्राह्मणके तीन जन्म होते हैं—एक तो माताके गर्भसे, दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा यज्ञकी दीक्षा लेनेसे। यज्ञोपवीतके समय गायत्री माता और आचार्य पिता होता है। वेदकी शिक्षा देनेसे आचार्यको पिता कहते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत होनेके पूर्व किसी भी वैदिक कर्मके करनेका अधिकारी वह नहीं होता। श्राद्धमें पढ़े जानेवाले वेदमन्त्रोंको छोड़कर (अनुपनीत द्विज) वेदमन्त्रका उच्चारण न करे, क्योंकि जबतक वेदारम्भ न हो जाय, तबतक वह शूद्रके समान माना गया है। यज्ञोपवीत सम्पन्न हो जानेपर वटुको व्रतका उपदेश ग्रहण करना चाहिये और तभीसे विधिपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिये। यज्ञोपवीतके समय जो-जो मेखला-चर्म, दण्ड और यज्ञोपवीत तथा वस्त्र जिस-जिसके लिये कहा गया है वह-वह ही धारण करे। अपनी तपस्याकी वृद्धिके लिये ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर गुरुके पास रहे और नियमोंका पालन करता रहे। नित्य स्नानकर पवित्र हो देवता, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करे। पुष्प, फल, जल, समिधा, मृत्तिका, कुशा और अनेक प्रकारके काष्ठोंका संग्रह रखे। मद्य, मांस, गन्ध, पुष्पमाला, अनेक प्रकारके रस और स्त्रियोंका परित्याग करे। प्राणियोंकी हिंसा, शरीरमें उबटन, अंजन लगाना, जूता और छत्र धारण करना, गीत सुनना, नाच देखना, जुआ खेलना, झूठ बोलना, निन्दा करना,

स्त्रियोंके समीप बैठना और काम, क्रोध तथा लोभादिके वशीभूत होना— इत्यादि बातें ब्रह्मचारीके लिये निषिद्ध हैं। उसे संयमपूर्वक एकाकी रहना चाहिये। वह जल, पुष्प, गौका गोबर, मृत्तिका और कुशा तथा आवश्यकतानुसार भिक्षा नित्य लाये। जो पुरुष अपने कर्मोंमें तत्पर हों और वेदादि शास्त्रोंको पढ़ें तथा यज्ञादिमें श्रद्धावान् हों ऐसे गृहस्थोंके घरसे ही ब्रह्मचारीको भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गुरुके कुलमें और अपने पारिवारिक बन्धु-बान्धवोंके घरोंसे भिक्षा न माँगे। यदि भिक्षा अन्यत्र न मिले तो इनके घरसे भी भिक्षा ग्रहण करे, किंतु जो महापातकी हों उनकी भिक्षा न ले। नित्य समिधा लाकर सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। भिक्षा माँगनेके समय वाणी संयमित रखे। ब्रह्मचारीके लिये भिक्षाका अन्न मुख्य है। एकका अन्न नित्य न ले। भिक्षावृत्तिसे रहना उपवासके बराबर माना गया है। यह धर्म केवल ब्राह्मणके लिये कहा गया है, क्षत्रिय और वैश्यके धर्ममें कुछ भेद है।

ब्रह्मचारी गुरुके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा रहे, जब गुरुकी आज्ञा हो तब बैठे, परंतु आसनपर न बैठे। गुरुके उठनेसे पूर्व उठे, सोनेके पश्चात् सोये, गुरुके सम्मुख अति नम्रतासे बैठे, परोक्षमें गुरुका नाम उच्चारण न करे, किसी भी बातमें गुरुका अनुकरण अर्थात् नकल न करे। गुरुकी निन्दा न करे और जहाँ निन्दा होती हो, आलोचना होती हो वहाँसे उठकर चला जाय अथवा कान बंद कर ले—

परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते।

कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥

(ब्राह्मपर्व ४। १७१)

वाहनपर चढ़ा हुआ गुरुका अभिवादन न करे अर्थात् वाहनसे उतरकर प्रणाम करे। गुरुके साथ

एक वाहन, शिला, नौकायन आदिपर बैठ सकता है। गुरुके गुरु तथा श्रेष्ठ सम्बन्धीजनों एवं गुरुपुत्रके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करे। गुरुकी सवर्णा स्त्रीको गुरुके समान ही समझे, परंतु गुरुपत्नीके उबटन लगाना, स्नानादि कराना, चरण दबाना आदि क्रियाएँ निषिद्ध हैं। माता, बहन या बेटीके साथ एक आसनपर न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रियोंका समूह विद्वान्को भी अपनी ओर खींच लेता है^१। जिस प्रकार भूमिको खोदते-खोदते जल मिल जाता है, उसी प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते-करते गुरुसे विद्या मिल जाती है। मुण्डन कराये हो, जटाधारी हो अथवा शिखी (बड़ी शिखासे युक्त) हो, चाहे जैसा भी ब्रह्मचारी हो उसको गाँवमें रहते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं होना चाहिये अर्थात् जलके तट अथवा निर्जन स्थानपर जाकर दोनों संध्याओंमें संध्या-वन्दन करना चाहिये। जिसके सोते-सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय वह महान् पापका भागी होता है और बिना प्रायश्चित्त (कृच्छ्रव्रत)-के शुद्ध नहीं होता।

माता, पिता, भाई और आचार्यका विपत्तिमें भी अनादर न करे। आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति हैं, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी तथा भाई आत्ममूर्ति है। इसलिये इनका सदा आदर करना चाहिये। प्राणियोंकी उत्पत्तिमें तथा पालन-पोषणमें माता-पिताको जो क्लेश सहन करना पड़ता है, उस क्लेशका बदला वे सौ वर्षोंमें भी सेवा करके नहीं चुका पाते^२। इसलिये माता-पिता और गुरुकी सेवा नित्य करनी चाहिये। इन तीनोंके संतुष्ट हो

जानेसे सब प्रकारके तपोंका फल प्राप्त हो जाता है, इनकी शुश्रूषा ही परम तप कहा गया है। इन तीनोंकी आज्ञाके बिना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। माता गार्हपत्य नामक अग्नि है, पिता दक्षिणाग्नि-स्वरूप है और गुरु आहवनीय अग्नि है। जिसपर ये तीनों प्रसन्न हो जायँ, वह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है और दीप्यमान होते हुए देवलोकमें देवताओंकी भाँति सुख-भोग करता है।

त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु त्रीँल्लोकाञ्जयते गृही।

दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्विवि मोदते॥

(ब्राह्मपर्व ४।२०१)

पिताकी भक्तिसे इहलोक, माताकी भक्तिसे मध्यलोक और गुरुकी सेवासे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो इन तीनोंकी सेवा करता है, उसके सभी धर्म सफल हो जाते हैं और जो इनका आदर नहीं करता, उसकी सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहते हैं, तबतक इनकी नित्य सेवा-शुश्रूषा और इनका हित करना चाहिये। इन तीनोंकी सेवा-शुश्रूषारूपी धर्ममें पुरुषका सम्पूर्ण कर्तव्य पूरा हो जाता है, यही साक्षात् धर्म है, अन्य सभी उपधर्म कहे गये हैं।

उत्तम विद्या अधम पुरुषमें हो तो भी उससे ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार चाण्डालसे भी मोक्षधर्मकी शिक्षा, नीच कुलसे भी उत्तम स्त्री, विषसे भी अमृत, बालकसे भी सुन्दर

१- मात्रा स्वस्वा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ (ब्राह्मपर्व ४।१८४)

२- आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माताप्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः॥

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(ब्राह्मपर्व ४।१९५-१९६)

उपदेशात्मक बात, शत्रुसे भी सदाचार और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण ग्रहण कर लेना चाहिये*। उत्तम स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुभाषित तथा अनेक प्रकारके शिल्प जहाँसे भी प्राप्त हों, ग्रहण कर लेने चाहिये। गुरुके शरीर-त्यागपर्यन्त जो गुरुकी सेवा करता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। पढ़नेके समय गुरुको कुछ देनेकी इच्छा न करे, किंतु पढ़नेके अनन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर भूमि, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, छत्र, उपानह, धान्य, शाक तथा वस्त्र आदि अपनी शक्तिके अनुसार गुरु-दक्षिणाके रूपमें देने चाहिये। जब

गुरुका देहान्त हो जाय, तब गुणवान् गुरुपुत्र, गुरुकी स्त्री और गुरुके भाइयोंके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार जो अविच्छिन्न-रूपसे ब्रह्मचारिधर्मका आचरण करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने ब्रह्मचारिधर्मका वर्णन किया। ब्राह्मणका उपनयन वसन्तमें, क्षत्रियका ग्रीष्ममें और वैश्यका शरद्-ऋतुमें प्रशस्त माना गया है। अब गृहस्थधर्मका वर्णन सुनें।

(अध्याय ४)

विवाह-संस्कारके उपक्रममें स्त्रियोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन तथा आचरणकी श्रेष्ठता

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! गुरुके आश्रममें ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए स्नातकको वेदाध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। घर आनेपर उस ब्रह्मचारीको पहले पुष्प-माला पहनाकर, शय्यापर बिठाकर उसका मधुपर्कविधिसे पूजन करना चाहिये। तब गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर उसे शुभ लक्षणोंसे युक्त सजातीय कन्यासे विवाह करना चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—हे मुनीश्वर! आप प्रथम स्त्रियोंके लक्षणोंका वर्णन करें और यह भी बतायें कि किन लक्षणोंसे युक्त कन्या शुभ होती है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! पूर्वकालमें ऋषियोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने स्त्रियोंके जो उत्तम लक्षण कहे हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतलाता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें।

ब्रह्माजीने कहा—ऋषिगणो! जिस स्त्रीके चरण लाल कमलके समान कान्तिवाले अत्यन्त कोमल

तथा भूमिपर समतल-रूपसे पड़ते हों अर्थात् बीचमें ऊँचे न रहें, वे चरण उत्तम एवं सुख-भोग प्रदान करनेवाले होते हैं। जिस स्त्रीके चरण रूखे, फटे हुए, मांसरहित और नाड़ियोंसे युक्त हों, वह स्त्री दरिद्रा और दुर्भगा होती है। यदि पैरकी अंगुलियाँ परस्पर मिली हों, सीधी, गोल, स्निग्ध और सूक्ष्म नखोंसे युक्त हों तो ऐसी स्त्री अत्यन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करनेवाली और राजमहिषी होती है। छोटी अंगुलियाँ आयुको बढ़ाती हैं, परंतु छोटी और विरल अंगुलियाँ धनका नाश करनेवाली होती हैं।

जिस स्त्रीके हाथकी रेखाएँ गहरी, स्निग्ध और रक्तवर्णकी होती हैं, वह सुख भोगनेवाली होती है, इसके विपरीत टेढ़ी और टूटी हुई हों तो वह दरिद्र होती है। जिसके हाथमें कनिष्ठाके मूलसे तर्जनीतक पूरी रेखा चली जाय तो ऐसी

* श्रद्धावानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥

स्त्री सौ वर्षतक जीवित रहती है और यदि न्यून हो तो आयु कम होती है। जिस स्त्रीके हाथकी अँगुलियाँ गोल, लम्बी, पतली, मिलानेपर छिद्ररहित, कोमल तथा रक्तवर्णकी हों, वह स्त्री अनेक सुख-भोगोंको प्राप्त करती है। जिसके नख बन्धुजीव-पुष्पके समान लाल एवं ऊँचे और स्निग्ध हों तो वह ऐश्वर्यको प्राप्त करती है तथा रूखे, टेढ़े, अनेक प्रकारके रंगवाले अथवा श्वेत या नीले-पीले नखोंवाली स्त्री दुर्भाग्य और दारिद्र्यको प्राप्त होती है। जिस स्त्रीके हाथ फटे हुए, रूखे और विषम अर्थात् ऊँचे-नीचे एवं छोटे-बड़े हों वह कष्ट भोगती है। जिस स्त्रीकी अँगुलियोंके पर्वोंमें समान रेखा हो अथवा यवका चिह्न होता है, उसे अपार सुख तथा अक्षय धन-धान्य प्राप्त होता है। जिस स्त्रीका मणिबन्ध सुस्पष्ट तीन रेखाओंसे सुशोभित होता है, वह चिरकालतक अक्षय भोग और दीर्घ आयुको प्राप्त करती है।

जिस स्त्रीकी ग्रीवामें चार अङ्गुलके परिमापमें स्पष्ट तीन रेखाएँ हों तो वह सदा रत्नोंके आभूषण धारण करनेवाली होती है। दुर्बल ग्रीवावाली स्त्री निर्धन, दीर्घ ग्रीवावाली बन्धकी, ह्रस्वग्रीवावाली मृतवत्सा होती है और स्थूल ग्रीवावाली दुःख-सन्ताप प्राप्त करती है। जिसके दोनों कंधे और कृकाटिका (गरदनका उठा हुआ पिछला भाग) ऊँचे न हों, वह स्त्री दीर्घ आयुवाली तथा उसका पति भी चिरकालतक जीता है।

जिस स्त्रीकी नासिका न बहुत मोटी, न पतली, न टेढ़ी, न अधिक लम्बी और न ऊँची होती है वह श्रेष्ठ होती है। जिस स्त्रीकी भौंहें ऊँची, कोमल, सूक्ष्म तथा आपसमें मिली हुई न हों, ऐसी स्त्री सुख प्राप्त करती है। धनुषके समान भौंहें सौभाग्य प्रदान करनेवाली होती हैं। स्त्रियोंके काले, स्निग्ध, कोमल और लम्बे

घुँघराले केश उत्तम होते हैं।

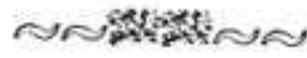
हंस, कोयल, वीणा, भ्रमर, मयूर तथा वेणु (वंशी) के समान स्वरवाली स्त्रियाँ अपार सुख-सम्पत्ति प्राप्त करती हैं और दास-दासियोंसे युक्त होती हैं। इसके विपरीत फूटे हुए काँसेके स्वरके समान स्वरवाली या गर्दभ और कौवेके सदृश स्वरवाली स्त्रियाँ रोग, व्याधि, भय, शोक तथा दरिद्रताको प्राप्त करती हैं। हंस, गाय, वृषभ, चक्रवाक तथा मदमस्त हाथीके समान चालवाली स्त्रियाँ अपने कुलको विख्यात बनानेवाली और राजाकी रानी होती हैं। श्वान, सियार और कौवेके समान गतिवाली स्त्री निन्दनीय होती है। मृगके समान गतिवाली दासी तथा द्रुतगामिनी स्त्री बन्धकी होती है। स्त्रियोंका फलिनी, गोरोचन, स्वर्ण, कुंकुम अथवा नये-नये निकले हुए दूर्वाङ्कुरके सदृश रंग उत्तम होता है। जिन स्त्रियोंके शरीर तथा अङ्ग कोमल, रोम और पसीनेसे रहित तथा सुगन्धित होते हैं, वे स्त्रियाँ पूज्य होती हैं।

कपिलवर्णवाली, अधिकाङ्गी, रोगिणी, रोमोंसे रहित, अत्यन्त छोटी (बौनी), वाचाल तथा पिंगल-वर्णवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, साँप आदि और दासीके नामपर जिसका नाम हो तथा डरावने नामवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके सब अङ्ग ठीक हों, सुन्दर नाम हो, हंस या हाथीकी-सी गति हो, जो सूक्ष्म रोम, केश और दाँतोंवाली तथा कोमलाङ्गी हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना उत्तम होता है। गौ तथा धन-धान्यादिसे अत्यधिक समृद्ध होनेपर भी इन दस कुलोंमें विवाहका सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिये—जो संस्कारोंसे रहित हों, जिनमें पुरुष-सन्तति न होती हो, जो वेदके पठन-पाठनसे रहित हों, जिनमें स्त्री-पुरुषोंके शरीरोंपर बहुत लम्बे केश हों, जिनमें

अर्श (बवासीर), क्षय (राजयक्ष्मा), मन्दाग्रि, मिरगी, श्वेत दाग और कुष्ठ-जैसे रोग होते हों।

ब्रह्माजीने ऋषियोंसे पुनः कहा—ये सब उत्तम लक्षण जिस कन्यामें हों और जिसका आचरण भी अच्छा हो उस कन्यासे विवाह करना चाहिये। स्त्रीके लक्षणोंकी अपेक्षा उसके सदाचारको ही अधिक प्रशस्त कहा गया है। जो स्त्री सुन्दर शरीर

तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त भी है, किंतु यदि वह सदाचारसम्पन्न (उत्तम आचरणयुक्त) नहीं है तो वह प्रशस्त नहीं मानी गयी है। अतः स्त्रियोंमें आचरणकी मर्यादाको अवश्य देखना चाहिये*। ऐसे सल्लक्षणों तथा सदाचारसे सम्पन्न सुकन्यासे विवाह करनेपर ऋद्धि, वृद्धि तथा सत्कीर्ति प्राप्त होती है। (अध्याय ५)



गृहस्थाश्रममें धन एवं स्त्रीकी महत्ता, धन-सम्पादन करनेकी आवश्यकता तथा समान कुलमें विवाह-सम्बन्धकी प्रशंसा

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—भगवन्! स्त्रियोंके लक्षणोंको तो मैंने सुना, अब उनके सद्वृत्त (सदाचार)-को भी मैं सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—महाबाहु शतानीक! ब्रह्माजीने ऋषियोंको स्त्रियोंके सद्वृत्त भी बतलाये हैं, उन्हें मैं आपको सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें। जब ऋषियोंने स्त्रियोंके सद्वृत्तके विषयमें ब्रह्माजीसे प्रश्न किया तब ब्रह्माजी कहने लगे—मुनीश्वरो! सर्वप्रथम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला व्यक्ति यथाविधि विद्याध्ययन करके सत्कर्मोंद्वारा धनका उपार्जन करे, तदनन्तर सुन्दर लक्षणोंसे युक्त और सुशील कन्यासे शास्त्रोक्त विधिसे विवाह करे। धनके बिना गृहस्थाश्रम केवल विडम्बना है। इसलिये धन-सम्पादन करनेके अनन्तर ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। मनुष्यके लिये घोर नरककी यातना सहनी अच्छी है, किंतु घरमें क्षुधासे तड़पते हुए स्त्री-पुत्रोंको देखना अच्छा नहीं है। फटे और मैले-कुचैले वस्त्र पहने, अति दीन और भूखे स्त्री-पुत्रोंको देखकर जिनका

हृदय विदीर्ण नहीं होता, वे वज्रके समान अति कठोर हैं। उनके जीवनको धिक्कार है, उनके लिये तो मृत्यु ही परम उत्सव है अर्थात् ऐसे पुरुषका मर जाना ही श्रेष्ठ है। अतः स्त्रीग्रहण करनेवाले अर्थहीन पुरुषके त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)-की सिद्धि कहाँ सम्भव है? वह स्त्री-सुख न प्राप्त कर यातना ही भोगता है। जैसे स्त्रीके बिना गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता, उसी प्रकार धन-विहीन व्यक्तियोंको भी गृहस्थ बननेका अधिकार नहीं है। कुछ लोग संतानको ही त्रिवर्गका साधन मानते हैं अर्थात् संतानसे ही धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, ऐसा समझते हैं; परंतु नीतिविशारदोंका यह अभिमत है कि धन और उत्तम स्त्री—ये दोनों त्रिवर्ग-साधनके हेतु हैं। धर्म भी दो प्रकारका कहा गया है—इष्ट धर्म और पूर्त धर्म। यज्ञादि करना इष्ट धर्म है और वापी, कूप, तालाब आदि बनवाना पूर्त धर्म है। ये दोनों धनसे ही सम्पन्न होते हैं।

दरिद्रीके बन्धु भी उससे लज्जा करते हैं और धनाढ्यके अनेक बन्धु हो जाते हैं। धन ही त्रिवर्गका

* लक्षणेभ्यः प्रशस्तं तु स्त्रीणां सद्वृत्तमुच्यते। सद्वृत्तयुक्ता या स्त्री सा प्रशस्ता न च लक्षणैः॥ (ब्राह्मपर्व ५।११०)

मूल है। धनवान्में विद्या, कुल, शील अनेक उत्तम गुण आ जाते हैं और निर्धनमें विद्यमान होते हुए भी ये गुण नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र, शिल्प, कला और अन्य भी जितने कर्म हैं, उन सबका तथा धर्मका साधन भी धन ही है। धनके बिना पुरुषका जन्म अजागल-स्तनवत् व्यर्थ ही है।

पूर्वजन्ममें किये गये पुण्योंसे ही इस जन्ममें प्रभूत धनकी प्राप्ति होती है और धनसे पुण्य होता है। इसलिये धन और पुण्यका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् ये एक-दूसरेके कारक हैं। पुण्यसे धनार्जन होता है और धनसे पुण्यार्जन होता है—

प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्धर्मकामादिहेतुजा।

भूयो धर्मेण सामुत्र तया ताविति च क्रमः ॥

(ब्राह्मपर्व ६।२३)

—इसलिये विद्वान् मनुष्यको इसी रीतिसे त्रिवर्ग-साधन करना चाहिये। स्त्रीरहित तथा निर्धन पुरुषका त्रिवर्ग-साधनमें अधिकार नहीं है। अतः भार्या-ग्रहणसे पूर्व उत्तम रीतिसे अर्थार्जन अवश्य कर लेना चाहिये। न्यायोपार्जित धनकी प्राप्ति होनेपर दार-परिग्रह करना चाहिये। अपने कुलके अनुरूप, धन, क्रिया आदिसे प्रसिद्ध, अनिन्दित, सुन्दर तथा धर्मकी साधनभूता कन्याको प्राप्त करना चाहिये। जबतक विवाह नहीं होता है, तबतक पुरुष अर्ध-शरीर ही होता है। इसलिये यथाक्रम उचित अवसर प्राप्त हो जानेपर विवाह करना चाहिये। जैसे एक पहियेका रथ अथवा एक पंखवाला पक्षी किसी कार्यमें सफल नहीं हो पाता, वैसे ही स्त्रीहीन पुरुष भी प्रायः

सभी धर्मकृत्योंमें असफल ही रहता है—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।

अभार्योऽपि नरः तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ॥

(ब्राह्मपर्व ६।३०)

पत्नी-परिग्रहसे धर्म तथा अर्थ दोनोंमें बहुत लाभ होता है और इससे आपसमें प्रीति उत्पन्न होती है, सत्प्रीतिसे कामरूपी तृतीय पुरुषार्थ भी प्राप्त हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कहना है। विवाह-सम्बन्ध तीन प्रकारका होता है—नीच कुलमें, समान कुलमें और उत्तम कुलमें। नीच कुलमें विवाह करनेसे निन्दा होती है। उत्तम कुलवालेके साथ विवाह करनेसे वे अनादर करते हैं। अपनेसे बड़े लोगोंके साथ बनाया गया विवाह-सम्बन्ध, नीचके साथ बनाये गये विवाह-सम्बन्धके प्रायः समान ही होता है। इस कारण अपने समान कुलमें ही विवाह करना चाहिये। मनस्वी लोग विजातीय सम्बन्ध भी ठीक नहीं मानते। यह वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसे कोयल और शुकका। जिस सम्बन्धमें प्रतिदिन स्नेहकी अभिवृद्धि होती रहती है और विपत्ति-सम्पत्तिके समय भी प्राणतक भी देनेमें विचार न किया जाय, वह सम्बन्ध उत्तम कहलाता है। परंतु यह बात उनमें ही होती है जो कुल, शील, विद्या और धन आदिमें समान होते हैं। मनुष्योंके स्नेह और कृतज्ञताकी परीक्षा विपत्तिमें ही होती है। इसलिये विवाह और परामर्श समानके साथ ही करना चाहिये, अपनेसे बड़े तथा छोटेके साथ नहीं। इसीमें अच्छी मित्रता रहती है। (अध्याय ६)

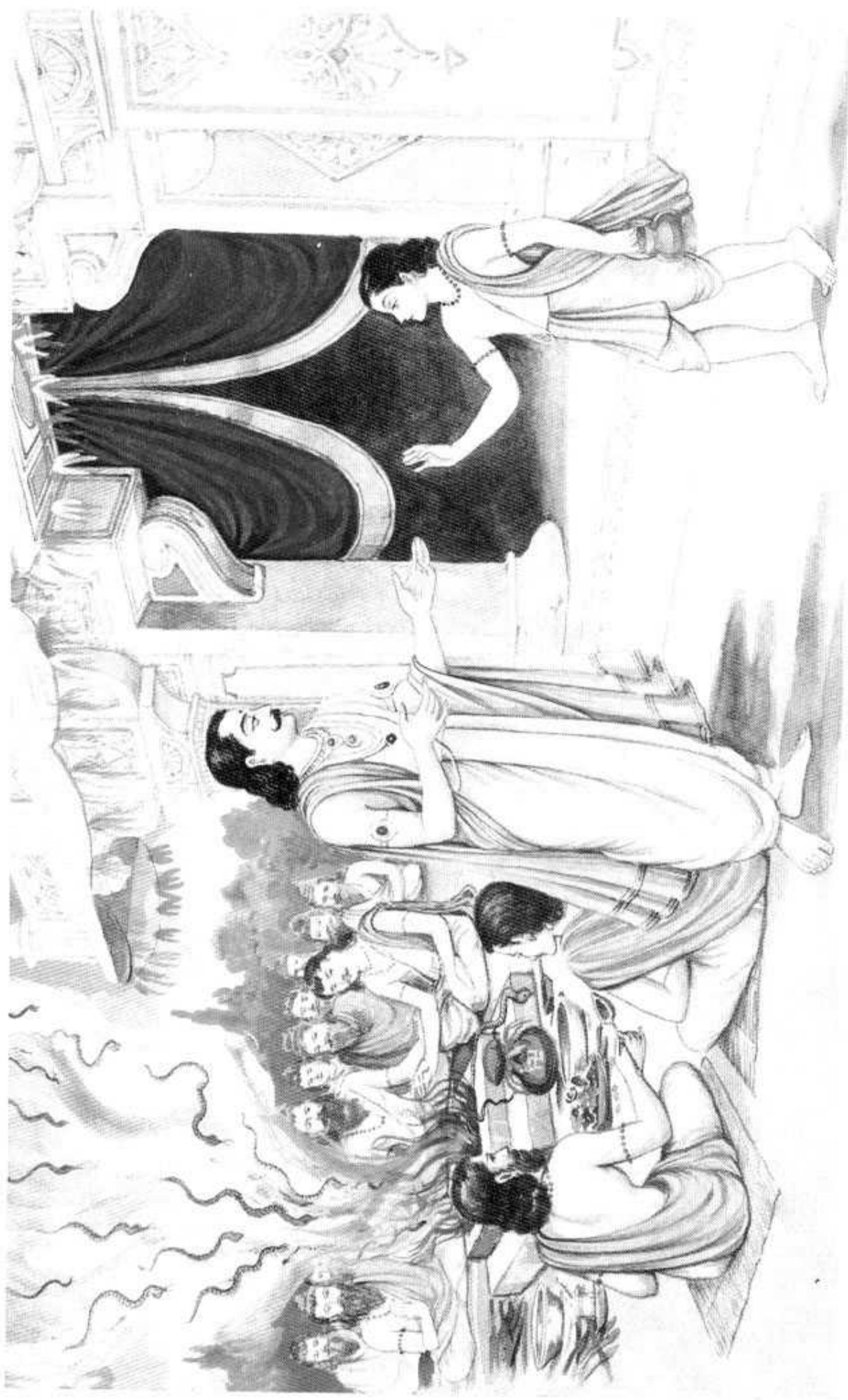


नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नोत्तमम्



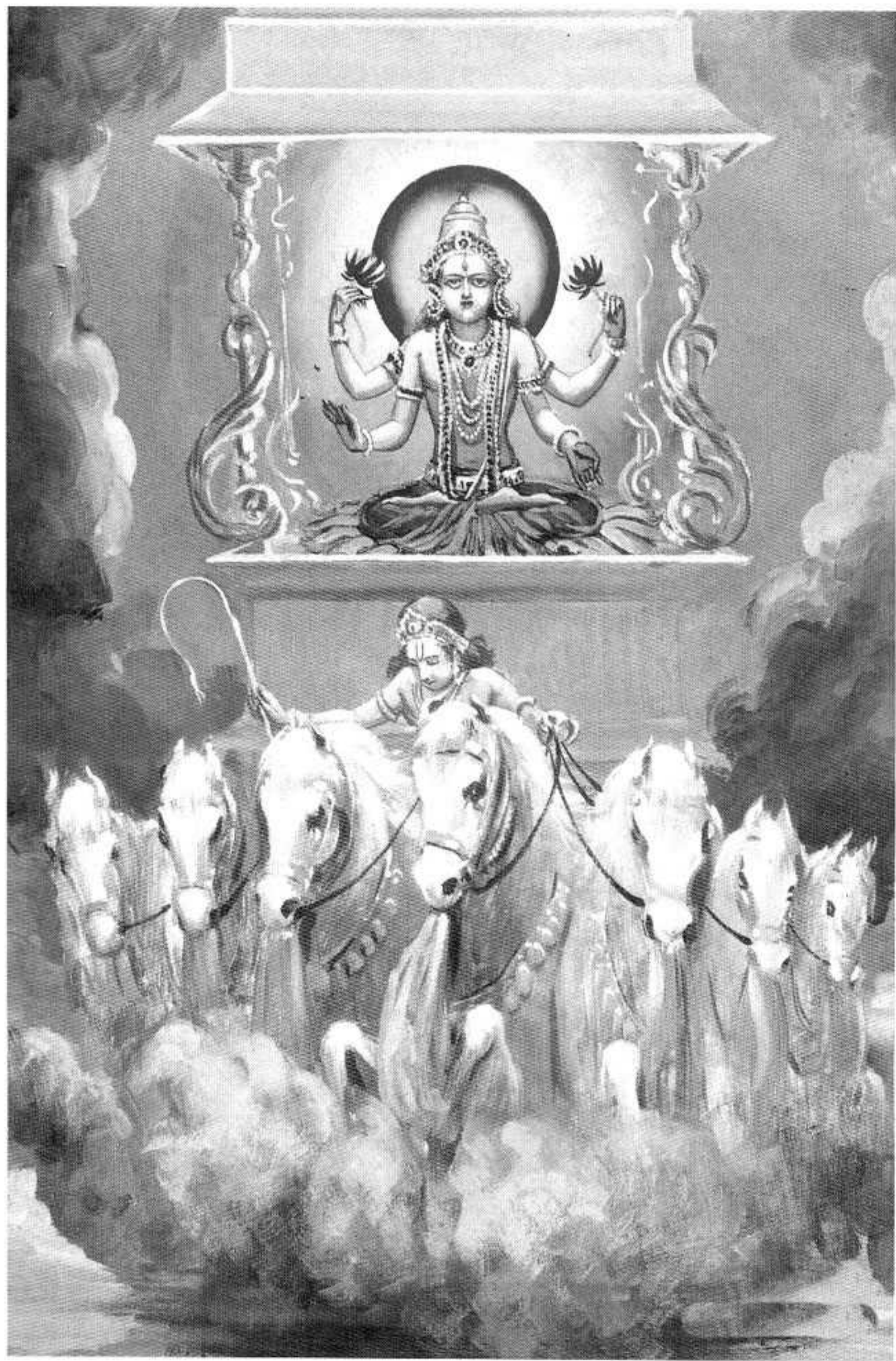
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्

नर-नारायण, सरस्वतीदेवी और व्यासदेवकी वन्दना





भगवान् कार्तिकेय



सप्ताश्ववाहन भगवान् सूर्य



सत्यनारायण भगवान् विष्णु



यमराज



भगवाण

परम आराध्य उमामहेश्वर

विवाह-सम्बन्धी तत्त्वोंका निरूपण, विवाहयोग्य कन्याके लक्षण, आठ प्रकारके विवाह, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि उत्तम देशोंका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो ! जो कन्या माताकी सपिण्ड अर्थात् माताकी सात पीढ़ीके अन्तर्गतकी न हो तथा पिताके समान गोत्रकी न हो, वह द्विजातियोंके विवाह-सम्बन्ध तथा संतानोत्पादनके लिये प्रशस्त मानी गयी है^१। जिस कन्याके भाई न हो और जिसके पिताके सम्बन्धमें कोई जानकारी न हो, ऐसी कन्यासे पुत्रिका-धर्मकी^२ आशंकासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह नहीं करना चाहिये। धर्मसाधनके लिये चारों वर्णोंको अपने-अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना श्रेष्ठ कहा गया है।

चारों वर्णोंके इस लोक और परलोकमें हिताहितके साधन करनेवाले आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। अच्छे शील-स्वभाववाले उत्तम कुलके वरको स्वयं बुलाकर उसे अलंकृत और पूजित कर कन्या देना 'ब्राह्म-विवाह' है। यज्ञमें सम्यक् प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विज्को अलंकृत कर कन्या देनेको 'दैव-विवाह' कहते हैं। वरसे एक या दो जोड़े गाय-बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देनेको 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। 'तुम दोनों एक साथ गृहस्थ-धर्मका पालन करो' यह कहकर पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है, वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है। कन्याके पिता आदिको और कन्याको भी यथाशक्ति धन आदि देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कन्याका ग्रहण करना 'आसुर-विवाह' है। कन्या और वरकी परस्पर इच्छासे जो विवाह होता है, उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। मार-पीट करके रोती-चिल्लाती कन्याका

अपहरण करके लाना 'राक्षस-विवाह' है। सोयी हुई, मदसे मतवाली या जो कन्या पागल हो गयी हो उसे गुप्तरूपसे उठा ले आना यह 'पैशाच' नामक अधम कोटिका विवाह है।

ब्राह्म-विवाहसे उत्पन्न धर्माचारी पुत्र दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछेके कुलोंका तथा इक्कीसवाँ अपना भी उद्धार करता है। दैव-विवाहसे उत्पन्न पुत्र सात पीढ़ी आगे तथा सात पीढ़ी पीछे इस प्रकार चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला होता है। आर्ष-विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन अगले तथा तीन पिछले कुलोंका उद्धार करता है तथा प्राजापत्य-विवाहसे उत्पन्न पुत्र छः पीछेके तथा छः आगेके कुलोंको तारता है। ब्राह्मादि आद्य चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शीलवान्, रूप, सत्त्वादि गुणोंसे युक्त, धनवान्, पुत्रवान्, यशस्वी, धर्मिष्ठ और दीर्घजीवी होते हैं। शेष चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र क्रूर-स्वभाव, धर्मद्वेषी और मिथ्यावादी होते हैं। अनिन्दित विवाहोंसे संतान भी अनिन्द्य ही होती है और निन्दित विवाहोंकी संतान भी निन्दित होती है। इसलिये आसुर आदि निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये। कन्याका पिता वरसे यत्किंचित् भी धन न ले। वरका धन लेनेसे वह अपत्यविक्रयी अर्थात् संतानका बेचनेवाला हो जाता है। जो पति या पिता आदि सम्बन्धी वर्ग मोहवश कन्याके धन आदिसे अपना जीवन चलाते हैं, वे अधोगतिको प्राप्त होते हैं। आर्ष-विवाहमें जो गो-मिथुन लेनेकी बात कही गयी है, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चाहे थोड़ा ले या अधिक, वह कन्याका मूल्य ही गिना जाता है, इसलिये

१-असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ (ब्राह्मपर्व ७।१, मनु०३।५)

२-पिता जिसके पुत्रसे अपने पिण्ड-पानीकी आशा करता है उसे पुत्रिका कहते हैं।

वरसे कुछ भी लेना नहीं चाहिये। जिन कन्याओंके निमित्त वर-पक्षसे दिया हुआ वस्त्राभूषणादि पिता-भ्राता आदि नहीं लेते, प्रत्युत कन्याको ही देते हैं, वह विक्रय नहीं है। यह कुमारियोंका पूजन है, इसमें कोई हिंसादि दोष नहीं है। इस प्रकार उत्तम विवाह करके उत्तम देशमें निवास करना चाहिये, इससे बहुत यशकी प्राप्ति होती है।

ऋषियोंने पूछा—ब्रह्मन्! वह कौन-सा देश है, जहाँ निवास करनेसे धर्म और यशकी वृद्धि होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! जिस देशमें धर्म अपने चारों चरणोंके साथ रहे, जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हों और सारे व्यवहार शास्त्रोक्त-रीतिसे सम्पन्न होते हों, वही देश उत्तम और निवास करने योग्य है।

ऋषियोंने पूछा—महाराज! विद्वान् जिस शास्त्रोक्त आचरणको ग्रहण करते हैं और धर्मशास्त्रमें जैसी विधि निर्दिष्ट की गयी है उसे हमें बतलायें, हमें इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है।

ब्रह्माजी बोले—राग-द्वेषसे रहित सज्जन एवं विद्वान् जिस धर्मका नित्य अपने शुद्ध अन्तःकरणसे आचरण करते हैं, उसे आप सुनें—

इस संसारमें किसी वस्तुकी कामना करना श्रेष्ठ नहीं है। वेदोंका अध्ययन करना और वेदविहित कर्म करना भी काम्य है। संकल्पसे कामना उत्पन्न होती है। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, व्रत-नियम,

धर्म आदि कर्म सब संकल्पमूलक ही हैं। इसीलिये सभी यज्ञ, दान आदि कर्म संकल्पपठनपूर्वक किये जाते हैं। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, जिसमें काम न हो। जो कोई भी जो कुछ करता है वह इच्छासे ही करता है^१।

श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने आत्माकी प्रसन्नता—इन चार बातोंसे धर्मका निर्णय होता है। श्रुति तथा स्मृतिमें कहे गये धर्मके आचरणसे इस लोकमें बहुत यश प्राप्त होता है और परलोकमें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। श्रुति वेदको कहते हैं और स्मृति धर्मशास्त्रका नाम है। इन दोनोंसे सभी बातोंका विचार करें, क्योंकि धर्मकी जड़ ये ही हैं, जो धर्मके मूल इन दोनोंका तर्क आदिके द्वारा अपमान करता है, उसे सत्पुरुषोंको तिरस्कृत कर देना चाहिये, क्योंकि वह वेदनिन्दक होनेसे नास्तिक ही है^२।

जिनके लिये मन्त्रोंद्वारा गर्भाधानसे श्मशानतक संस्कारकी विधि कही गयी है, उन्हीं लोगोंको वेद तथा जपमें अधिकार है। सरस्वती तथा दृषद्वती—इन दो देवनदियोंके बीचका जो देश है वह देवताओंद्वारा बनाया गया है, उसे ब्रह्मावर्त कहते हैं। उस देशमें चारों वर्ण और उपवर्णोंमें जो आचार परम्परासे चला आया है, उसका नाम सदाचार है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पाञ्चाल और शूरसेन देश (मथुरा)—ये ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित हैं, परंतु ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून हैं। इन देशोंमें

१- कामकी गणना चार पुरुषार्थोंमें है। भोगकी कामनाके विरुद्ध योग, यज्ञ, जप-तप, धर्मसंस्थापन और गति-मुक्तिकी कामना ही शुभ कामना है। गीता (७।११)-में भी भगवान् 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥' कहकर मनको इन्हीं सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करनेकी आज्ञा देते हैं। यह एक प्रकारसे निष्कामताकी जननी है। वैदिक कर्मयोगको भी भविष्यपुराणमें सकाम कहनेका यही भाव है।

२- निगमो धर्ममूलं स्यात् स्मृतिशीले तथैव च । तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् सदा नरः । प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम् ॥

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥

योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ (ब्राह्मपर्व ७।५२, ५४-५७)

उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे सब देशके मनुष्य अपना-अपना आचार सीखते हैं^१। हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीच, विनशनसे पूर्व और प्रयागसे पश्चिम जो देश है उसे मध्यदेश कहते हैं। इन्हीं दोनों पर्वतोंके बीच पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक जो देश है वह आर्यावर्त कहलाता है^२।

जिस देशमें कृष्णसार मृग अपनी इच्छासे नित्य विचरण करें, वह देश यज्ञ करने योग्य होता है। इन शुभ देशोंमें ब्राह्मणको निवास करना चाहिये। इससे भिन्न म्लेच्छ देश हैं। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने यह देशव्यवस्था आप सबको संक्षेपमें सुनायी है। (अध्याय ७)



धन एवं स्त्रीके तीन आश्रय तथा स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! उत्तम रीतिसे विवाह सम्पन्न कर गृहस्थको जो करना चाहिये, उसका मैं वर्णन करता हूँ।

सर्वप्रथम गृहस्थको उत्तम देशमें ऐसा आश्रय ढूँढ़ना चाहिये, जहाँ वह अपने धन तथा स्त्रीकी भलीभाँति रक्षा कर सके। बिना आश्रयके इन दोनोंकी रक्षा नहीं हो सकती। ये दोनों—धन एवं स्त्री—त्रिवर्गके हेतु हैं, इसलिये इनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा अवश्य करनी चाहिये। पुरुष, स्थान और घर—ये तीनों आश्रय कहलाते हैं। इन तीनोंसे धन आदिका रक्षण और अर्थोपार्जन होता है। कुलीन, नीतिमान्, बुद्धिमान्, सत्यवादी, विनयी, धर्मात्मा और दृढव्रती पुरुष आश्रयके योग्य होता है। जहाँ धर्मात्मा पुरुष रहते हों, ऐसे नगर अथवा ग्राममें निवास करना चाहिये। ऐसे स्थानमें गुरुजनोंकी अनुमति लेकर अथवा उस ग्राम आदिमें बसनेवाले श्रेष्ठजनोंकी सहमति प्राप्त कर रहनेके लिये अविवादित स्थलमें घर बनाना चाहिये, परंतु किसी पड़ोसीको कष्ट नहीं देना चाहिये। नगरके द्वार, चौक, यज्ञशाला, शिल्पियोंके रहनेके स्थान, जुआ खेलने तथा मांस-मद्यादि बेचनेके स्थान, पाखण्डियों और राजाके नौकरोंके रहनेके स्थान, देवमन्दिरके मार्ग तथा राजमार्ग और राजाके महल—इन स्थानोंसे दूर,

रहनेके लिये अपना घर बनाना चाहिये। स्वच्छ, मुख्य मार्गवाला, उत्तम व्यवहारवाले लोगोंसे आवृत तथा दुष्टोंके निवाससे दूर—ऐसे स्थानमें गृहका निर्माण करना चाहिये। गृहके भूमिकी ढाल पूर्व अथवा उत्तरकी ओर हो। रसोईघर, स्नानागार, गोशाला, अन्तःपुर तथा शयन-कक्ष और पूजाघर आदि सब अलग-अलग बनाये जायँ। अन्तःपुरकी रक्षाके लिये वृद्ध, जितेन्द्रिय एवं विश्वस्त व्यक्तियोंको नियुक्त करना चाहिये। स्त्रियोंकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं और अनेक प्रकारके दोष भी होते देखे गये हैं। स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता न दे और न उनपर विश्वास करे। किंतु व्यवहारमें विश्वस्तके समान ही चेष्टा दिखानी चाहिये। विशेषरूपसे उसे पाकादि क्रियाओंमें ही नियुक्त करना चाहिये। स्त्रीको किसी भी समय खाली नहीं बैठना चाहिये।

दरिद्रता, अति-रूपवत्ता, असत्-जनोंका सङ्ग, स्वतन्त्रता, पेयादि द्रव्यका पान करना तथा अभक्ष्य-भक्षण करना, कथा, गोष्ठी आदि प्रिय लगना, काम न करना, जादू-टोना करनेवाली, भिक्षुकी, कुट्टिनी, दाई, नटी आदि दुष्ट स्त्रियोंके सङ्ग उद्यान, यात्रा, निमन्त्रण आदिमें जाना, अत्यधिक तीर्थयात्रा करना अथवा देवताके दर्शनोंके लिये

१-एतद्देशप्रसूतस्य

सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (ब्राह्मपर्व ७।५३)

२-आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु

पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरायावर्तं विदुर्बुधाः ॥ (ब्राह्मपर्व ७।६५)

घूमना, पतिके साथ बहुत वियोग होना, कठोर व्यवहार करना, पुरुषोंसे अत्यधिक वार्तालाप करना, अति क्रूर, अति सौम्य, अति निडर होना, ईर्ष्यालु तथा कृपण होना और किसी अन्य स्त्रीके वशीभूत हो जाना—ये सब स्त्रीके दोष उसके विनाशके हेतु हैं। ऐसी स्त्रियोंके अधीन यदि पुरुष हो जाता है तो वह भी निन्दनीय हो जाता है। यह पुरुषकी ही अयोग्यता है कि उसके भृत्य बिगड़ जाते हैं। स्वामी यदि कुशल न हो तो भृत्य और स्त्री बिगड़ जाते हैं, इसलिये समयके अनुसार यथोचित रीतिसे ताडन और शासनसे जिस भाँति हो इनकी रक्षा करनी चाहिये। नारी पुरुषका आधा शरीर है, उसके बिना धर्म-क्रियाओंकी साधना नहीं हो सकती। इस कारण स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। उसके प्रतिकूल नहीं करना चाहिये।

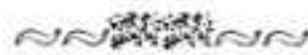
स्त्रीके पतिव्रता होनेके प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं—(१) पर-पुरुषमें विरक्ति, (२) अपने पतिमें प्रीति तथा (३) अपनी रक्षामें समर्थता^१।

उत्तम स्त्रीको साम तथा दाननीतिसे अपने अधीन रखे। मध्यम स्त्रीको दान और भेदसे और अधम स्त्रीको भेद और दण्डनीतिसे वशीभूत करे। परंतु दण्ड देनेके अनन्तर भी साम-दान आदिसे उसको प्रसन्न कर ले। भर्ताका अहित करनेवाली और व्यभिचारिणी स्त्री कालकूट विषके समान होती है, इसलिये उसका परित्याग कर

देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न पतिव्रता, विनीत और भर्ताका हित चाहनेवाली स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। इस रीतिसे जो पुरुष चलता है वह त्रिवर्गकी प्राप्ति करता है और लोकमें सुख पाता है।

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! मैंने संक्षेपमें पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये, यह बताया। अब पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसे बता रहा हूँ आप सब सुनें—

पतिकी सम्यक् आराधना करनेसे स्त्रियोंको पतिका प्रेम प्राप्त होता है तथा फिर पुत्र तथा स्वर्ग आदि भी उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीको पतिकी सेवा करना आवश्यक है। सम्पूर्ण कार्य विधिपूर्वक किये जानेपर ही उत्तम फल देते हैं और विधि-निषेधका ज्ञान शास्त्रसे जाना जाता है। स्त्रियोंका शास्त्रमें अधिकार नहीं है और न ग्रन्थोंके धारण करनेमें अधिकार है। इसलिये स्त्रीद्वारा शासन अनर्थकारी माना जाता है^२। स्त्रीको दूसरेसे विधि-निषेध जाननेकी अपेक्षा रहती है। पहले तो उसे भर्ता सब धर्मोंका निर्देश करता है और भर्ताके मरनेके अनन्तर पुत्र उसे विधवा एवं पतिव्रताके धर्म बतलाये। बुद्धिके विकल्पोंको छोड़कर अपने बड़े पुरुष जिस मार्गपर चले हों, उसीपर चलनेमें उसका सब प्रकारसे कल्याण है। पतिव्रता स्त्री ही गृहस्थके धर्मोंका मूल है। (अध्याय ८-९)



पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्य एवं सदाचारका वर्णन, स्त्रियोंके लिये गृहस्थ-धर्मके उत्तम व्यवहारकी आवश्यक बाते^३

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! गृहस्थ-धर्मका मूल पतिव्रता स्त्री है, पतिव्रता स्त्री पतिका आराधन | किस विधिसे करे, उसका अब मैं वर्णन करता हूँ। आप सब इसे ध्यानपूर्वक सुनें।

१. सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम् । परपुंसामसम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे ॥ (ब्राह्मपर्व ८।६६)
 २. शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे । तस्मादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम् ॥ (ब्राह्मपर्व ९।६)
 ३. इस प्रकरणमें आगेके कुछ अंश—गोरक्षा, व्यापार, कृषि और लोक-संचालन आदि विषय प्रायः वार्ताशास्त्रसे सम्बन्धित हैं, जो लगभग नष्टप्राय हो गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण भविष्यपुराणमें मिलता है, जिसके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।

आराधना करने योग्य पतिके आराधनकी विधि यह है कि उसकी चित्तवृत्तिको भलीभाँति जानकर उसके अनुकूल चलना और सदा उसका हित चाहते रहना अर्थात् पतिके चित्तके अनुकूल चलना और यथोचित व्यवहार करना, यह पतिव्रताका मुख्य धर्म है—

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः ।

चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा ॥

(ब्राह्मपर्व १०।१)

पतिके माता-पिता, बहिन, ज्येष्ठ भाई, चाचा, आचार्य, मामा तथा वृद्ध स्त्रियों आदिका उसे आदर करना चाहिये और जो सम्बन्धमें अपनेसे छोटे हों, उनको स्नेहपूर्वक आज्ञा देनी चाहिये। जहाँ भी अपनेसे बड़े सास-ससुर या गुरु विद्यमान हों या अपना पति उपस्थित हो वहाँ उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिये; क्योंकि यही चरित्र स्त्रियोंके लिये प्रशस्त माना गया है। हास-परिहास करनेवाले पतिके मित्र और देवर आदिके साथ भी एकान्तमें बैठकर हास-परिहास नहीं करना चाहिये। किसी पुरुषके साथ एकान्तमें बैठना, स्वच्छन्दता और अत्यधिक हास-परिहास करना प्रायः कुलीन स्त्रियोंके पातिव्रत-धर्मको नष्ट करनेके कारण बनते हैं। सहसा दुष्टके संसर्गमें आकर युवकोंके साथ हास-परिहास करना उचित नहीं होता, क्योंकि स्वतन्त्र स्त्रियोंकी निर्भीकता एकान्तमें बुरे आचरणके लिये सफल हो जाती है। अतः उत्तम स्त्रीको ऐसा नहीं करना चाहिये। इस रीतिसे स्त्रीका शील नहीं बिगड़ता और कुलकी निन्दा भी नहीं होती। बुरे संकेत करनेवाले और बुरे भावोंको प्रकट करनेवाले पुरुषोंको भाई या पिताके समान देखते हुए स्त्रीको चाहिये कि उनका सर्वथा परित्याग कर दे। दुष्ट पुरुषोंका अनुचित आग्रह स्वीकार करना, उनके साथ वार्तालाप करना,

हासयुक्त संकेत अथवा कुदृष्टिपर ध्यान देना, दूसरे पुरुषके हाथसे कुछ लेना या उसे देना सर्वथा परित्याज्य है। घरके द्वारपर बैठने या खड़ा होने, राजमार्गकी ओर देखने, किसी अपरिचित देश या घरमें जाने, उद्यान और प्रदर्शनी आदिमें रुचि रखनेसे स्त्रीको बचना चाहिये। बहुत पुरुषोंके मध्यसे निकलना, ऊँचे स्वरसे बोलना, हँसी-मजाक करना एवं अपनी दृष्टि, वाणी तथा शरीरसे चापल्य प्रकट करना, खँखारना तथा सीत्कारी भरना, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, तान्त्रिक, मान्त्रिक आदिमें आसक्ति और उनके मण्डलोंमें निवास करनेकी इच्छा—ये सब बातें पतिव्रता स्त्रीके लिये त्याज्य हैं। इस प्रकारके आचरण तो प्रायः दुष्टोंके लिये ही उचित होते हैं, कुलीन स्त्रियोंके लिये नहीं। इन निन्दनीय बातोंसे अपनी रक्षा करते हुए स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने पातिव्रत-धर्म तथा कुलकी मर्यादाकी रक्षा करें।

उत्तम स्त्री पतिको मन, वचन तथा कर्मसे देवताके समान समझे और उसकी अर्धाङ्गिनी बनकर सदा उसके हित करनेमें तत्पर रहे। देवता और पितरोंके कृत्य तथा पतिके स्नान, भोजन एवं अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कार आदिमें बड़ी ही सावधानी और समयका ध्यान रखे। वह पतिके मित्रोंको मित्र तथा शत्रुओंको शत्रुके समान समझे। अधर्म और अनर्थसे दूर रहकर पतिको भी उससे बचाये। पतिको क्या प्रिय है और कौन-सा भोजनादि पदार्थ उसके लिये हितकर है तथा कैसे पतिके साथ विचारों आदिमें समानता आये इस बातको सर्वदा उसे ध्यानमें रखना चाहिये, साथ ही उसे सेवकोंको असंतुष्ट नहीं रखना चाहिये।

रहनेका घर और शरीर—ये दो गृहणियोंके लिये मुख्य हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक वह सर्वप्रथम अपने घर तथा शरीरको सुसंस्कृत (पवित्र) रखे।

शरीरसे भी अधिक स्वच्छ और भूषित घरको रखे। तीनों कालोंमें पूजा-अर्चना करे और व्यवहारकी सभी वस्तुओंको यथाविधि साफ रखे। प्रातः, मध्याह्न और सायंकालके समय घरका मार्जन कर स्वच्छ करे। गोशाला आदिको स्वच्छ करवा ले। दास-दासियोंको भोजन आदिसे संतुष्ट कर उन्हें अपने-अपने कार्योंमें लगाये। स्त्रीको उचित है कि वह प्रयोगमें आनेवाले शाक, कन्द, मूल, फल आदिके बीजोंका अपने-अपने समयपर संग्रह कर ले और समयपर इन्हें खेत आदिमें बुआ दे। ताँबे, काँसे, लोहे, काष्ठ और मिट्टीसे बने हुए अनेक प्रकारके बर्तनोंका घरमें संग्रह रखे। जल रखने तथा जल निकालने और जल पीनेके कलशादि पात्र, शाक-भाजी आदिसे सम्बद्ध विभिन्न पात्र, घी, तेल, दूध, दही आदिसे सम्बद्ध बर्तन, मूसल, ओखली, झाड़ू, चलनी, सँड़सी, सिल, लोढ़ा, चक्की, चिमटा, कड़ाही, तवा, तराजू, बाट, पिटार, संदूक, पलंग तथा चौकी आदि गृहस्थीके प्रयोगमें आनेवाले आवश्यक उपकरणोंकी प्रयत्नपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिये। उसे चाहिये कि वह होंग, जीरा, पिप्पल, राई, मरिच, धनिया तथा सोंठ आदि अनेक प्रकारके मसाले, लवण, अनेक प्रकारके क्षार-पदार्थ, सिरका, अचार आदि, अनेक प्रकारकी दालें, सब प्रकारके तेल, सूखा काष्ठ, विविध प्रकारके दूध-दहीसे बने पदार्थ और अनेक प्रकारके कन्द आदि जो-जो भी वस्तु नित्य तथा नैमित्तिक कार्योंमें अपेक्षित हों, उन्हें अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रयत्नपूर्वक पहलेसे ही संग्रह करना चाहिये, जिससे समयपर उन्हें ढूँढ़ना न पड़े। जिस वस्तुकी भविष्यमें आवश्यकता पड़े, उसे पहलेसे ही संग्रहमें रखना चाहिये। सूखे-गीले, पिसे, बिना पिसे तथा कच्चे और पक्के अन्नादि पदार्थोंका अच्छी तरह हानि-लाभ विचारकर ही संग्रह करना चाहिये।

पतिव्रता नारी गुरु, बालक, वृद्ध, अभ्यागत और पतिकी सेवामें आलस्य न करे। पतिकी शय्या स्वयं बिछाये। देवर आदिके द्वारा पहिने हुए वस्त्र, माला तथा आभूषणोंको वह कभी न तो धारण करे और न इनके शय्या, आसन आदिपर बैठे। गौका इतना दूध निकाले कि जिसमें बछड़े भूखे न रह जायँ। दहीसे घी बनाये। वर्षा, शरद् और वसन्त-ऋतुमें गायको दो बार दुहना चाहिये, शेष ऋतुओंमें एक ही बार दुहे। चरवाहे, ग्वाले आदिको चरवाहीके बदले रुपये अथवा अनाज दे। गोदोहक बछड़ोंका भाग अपने प्रयोगमें न ला सकें, यह देखता रहे, साथ ही यह भी ध्यान रखे कि दूध दुहनेवाला समयपर दूध दुह रहा है या नहीं, क्योंकि दोहनके यथोचित समयपर ही गायको दुहना चाहिये। समयका अतिक्रमण अच्छा नहीं होता। जब गाय ब्याय जाय, तब एक महीनेतक उसका दूध नहीं निकालना चाहिये, उसे बछड़ेको ही पीने देना चाहिये। फिर एक महीनेतक एक थनका, तदनन्तर एक महीनेतक दो थनका और फिर तीन थनका दूध निकालना चाहिये। एक या दो थन बछड़ेके लिये अवश्य छोड़ना चाहिये। यथासमय तिलकी खली, कोमल हरी घास, नमक तथा जल आदिसे बछड़ोंका पालन करना चाहिये। बूढ़ी, गर्भिणी, दूध देनेवाली, बछड़ेवाली तथा बछियावाली—इन पाँचों गायोंका घास आदिके द्वारा समानरूपसे बराबर पालन-पोषण करते रहना चाहिये। किसीको भी न्यून तथा अधिक न समझे। गौके गलेमें घंटी अवश्य बाँधनी चाहिये। एक तो घंटी बाँधनेसे गौकी शोभा होती है, दूसरे उसके शब्दोंसे कोई जीव-जन्तु डरकर उसके पास नहीं आते, इससे उसकी रक्षा भी होती है और गौ कहीं चली जाय तो उसके शब्दसे उसे ढूँढ़ा भी जा सकता है। हिंसक पशुओं और सर्पोंसे रहित,

घास और जलसे युक्त, छायादार घने वृक्षोंवाले तथा पशुओंके रोगसे रहित स्थानपर गायोंके रहनेके लिये गोष्ठ या गोशाला बनानी चाहिये। कृषि-कार्यमें लगे सेवकोंके लिये देश-काल और उनके कार्यके अनुरूप भोजन तथा वेतनका प्रबन्ध करना चाहिये। खेत, खलिहान अथवा वाटिका आदिमें जहाँ भी सेवक कामपर लगे हों वहाँ बार-बार जाकर उनके कार्य एवं कार्यके प्रति उनके मनोयोगकी जानकारी करनी चाहिये। उनमेंसे जो योग्य हो, अच्छा कार्य करता हो, उसका अधिक सत्कार करे और उसके लिये भोजन, आवास आदिकी औरोंसे विशेष व्यवस्था करे। समय-समयपर सब प्रकारके अन्न और कन्द-मूलके बीजोंका संग्रह करे तथा यथासमय उनकी बुआई कर दे।

घरका मूल है स्त्री और गृहस्थाश्रमका मूल है अन्न। इसलिये भोज्यादि अन्न पदार्थोंमें घरकी स्त्रीको मुक्तहस्त नहीं होना चाहिये अर्थात् अन्नको वह वृथा नष्ट न करे, सदा सँजोकर रखे। उसे मितव्ययी होना चाहिये। अन्नादिमें मुक्तहस्त होना गृहिणियोंके लिये अच्छा नहीं माना जाता। वह संचय करनेमें और खर्च करनेमें मधुमक्खी, वल्मीक और अंजनके समान हानि-लाभ देखकर अन्नको थोड़ा-सा समझकर उसकी अवज्ञा न करे। क्योंकि थोड़ा-थोड़ा ही मधु एकत्र करती हुई मधुमक्खी कितना एकत्र कर लेती है? इसी प्रकार दीमक जरा-जरा-सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा वल्मीक बना लेती है? किंतु इसके विपरीत बहुत-सा बनाया गया अंजन भी नित्य थोड़ा-थोड़ा आँखमें डालते रहनेसे कुछ दिनोंमें समाप्त हो जाता है। इसी रीतिसे सभी वस्तुओंका संग्रह और खर्च हो जाता है। इसमें थोड़ी वस्तुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। घरके सभी कार्य स्त्री-पुरुषके एकमत होनेपर ही अच्छे होते हैं।

जगत्में ऐसे भी हजारों पुरुष हैं, जिनके सब कार्योंमें स्त्रीकी प्रधानता रहती है। यदि स्त्री बुद्धिमान् और सुशील हो तो कुछ हानि नहीं होती, किंतु इसके विपरीत होनेपर अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। इसलिये स्त्रीकी योग्यता-अयोग्यताको ठीकसे समझकर बुद्धिमान् पुरुषको उसे कार्यमें नियुक्त करना चाहिये। इस प्रकार योग्यतासे कार्यमें नियुक्त की गयी स्त्रीको चाहिये कि वह सौभाग्यवश या अपने उद्यम आदिसे अपने पतिकी भलीभाँति सेवा कर उसे अपने अनुकूल बनाये।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वरो! घरमें स्त्री प्रातःकाल सबसे पहले उठे और अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाय तथा रात्रिमें सबसे पीछे भोजन करे और सबके बादमें सोये। पति तथा ससुर आदिके उपस्थित न रहनेपर स्त्रीको घरकी देहली पार नहीं करनी चाहिये। वह बड़े सबेरे ही जग जाय। स्त्री पतिके समीप बैठकर ही सब सेवकोंको कामकी आज्ञा दे, बाहर न जाय। जब पति भी जग उठे तब वहाँके सभी आवश्यक कार्य करके, घरके अन्य कार्योंको भी प्रमादरहित होकर करे। रात्रिके पहले ही उत्तम वस्त्राभूषणोंको उतारकर घरके कार्योंको करने योग्य साधारण वस्त्रोंको पहनकर तत्तत् समयमें करने योग्य कार्योंको यथाक्रम करना चाहिये। उसे चाहिये कि सबसे पहले रसोई, चूल्हा आदिको भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ करे। रसोईके पात्रोंको माँज-धो और पोंछकर वहाँ रखे तथा अन्य भी सब रसोईकी सामग्री वहाँ एकत्र करे। रसोई-घर न तो अधिक गुप्त (बंद) हो और न एकदम खुला ही हो। स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमेंसे धुआँ निकल जाय ऐसा होना चाहिये। रसोई-घरके भोजन पकानेवाले पात्रोंको तथा दूध-दहीके पात्रोंको सीपी, रस्सी अथवा वृक्षकी छालसे खूब रगड़कर अंदर-बाहरसे अच्छी तरह धो लेना चाहिये। रात्रिमें धुएँ-आगके

द्वारा तथा दिनमें धूपमें उन्हें सुखा लेना चाहिये, जिससे उन पात्रोंमें रखा जानेवाला दूध-दही आदि खराब न होने पाये। बिना शोधित पात्रोंमें रखा दूध-दही विकृत हो जाता है। दूध-दही, घी तथा बने हुए पाकादिको सावधानीसे रखना चाहिये और उसका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

स्नानादि आवश्यक कृत्य करके उसे अपने हाथसे पतिके लिये भोजन बनाना चाहिये। उसे यह विचार करना चाहिये कि मधुर, क्षार, अम्ल आदि रसोंमें कौन-कौन-सा भोजन पतिको प्रिय है, किस भोजनसे अग्रिकी वृद्धि होती है, क्या पथ्य है और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा, क्या अपथ्य है, उत्तम स्वास्थ्य किस भोजनसे प्राप्त होगा और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा आदि बातोंका भलीभाँति विचारकर और निर्णयकर उसे वैसा ही भोजन प्रीतिपूर्वक बनाना चाहिये। रसोई-घरमें सदासे काम करनेवाले, विश्वस्त तथा आहारका परीक्षण करनेवाले व्यक्तिको ही सूपकारके रूपमें नियुक्त करना चाहिये। रसोईके स्थानमें किसी अन्य दुष्ट स्त्री-पुरुषोंको न आने दे। इस विधिसे भोजन बनाकर सब पदार्थोंको स्वच्छ पात्रोंसे आच्छादित कर देना चाहिये, फिर रसोई-घरसे बाहर आकर पसीने आदिको पोंछकर, स्वच्छ होकर, गन्ध, ताम्बूल, माला-वस्त्र आदिसे अपनेको थोड़ा-सा भूषित करे। फिर भोजनके निमित्त यथोचित समयपर विनयपूर्वक पतिको बुलाये। सब प्रकारके व्यञ्जन परोसे, जो देश-कालके विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो, जैसे दूध और लवणका है। जिस पदार्थमें पतिकी अधिक रुचि देखे उसे और परसे। इस प्रकार पतिको प्रीतिपूर्वक भोजन कराये।

सपत्नियोंको अपनी बहिनके समान तथा उनकी संतानोंको अपनी संतानसे भी अधिक प्रिय समझे।

उनके भाई-बन्धुओंको अपने भाइयोंके समान ही समझे। भोजन, वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल आदि जबतक सपत्नियोंको न दे दे, तबतक स्वयं भी ग्रहण न करे। यदि सपत्नीको अथवा किसी आश्रित जनको कुछ रोग हो जाय तो उसकी चिकित्साके लिये ओषधि आदिकी भलीभाँति व्यवस्था कराये। नौकर, बन्धु और सपत्नीको दुःखी देख स्वयं भी उन्हींके समान दुःखी होवे और उनके सुखमें सुख माने। सभी कार्योंसे अवकाश मिलनेपर सो जाय और रात्रिमें उठकर अनावश्यक धन-व्यय कर रहे पतिको एकान्तमें धीरे धीरे समझाये। घरका सब वृत्तान्त पतिको एकान्तमें बताये, परंतु सपत्नियोंके दोषोंको न कहे, किंतु यदि कोई उनका व्यभिचार आदि बड़ा दोष देखें, जिसे गुप्त रखनेसे कोई अनर्थ हो तो ऐसा दोष पतिको अवश्य बता देना चाहिये। दुर्भगा, निःसंतान तथा पतिद्वारा तिरस्कृत सपत्नियोंको सदा आश्वासन दे। उन्हें भोजन, वस्त्र, आभूषण आदिसे दुःखी न होने दे। यदि किसी नौकर आदिपर पति कोप करे तो उसे भी आश्वस्त करना चाहिये, परंतु यह अवश्य विचार कर लेना चाहिये कि इसे आश्वासन देनेसे कोई हानि नहीं होनेवाली है।

इस प्रकार स्त्री अपने पतिकी सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करे। अपने सुखके लिये जो अभीष्ट हो, उसका भी परित्याग कर पतिके अनुकूल ही सब कार्य करे; क्योंकि स्त्रियोंके देवता पति, वर्णोंके देवता ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं और प्रजाओंका देवता राजा है।

स्त्रियोंके त्रिवर्ग-प्राप्तिके दो मुख्य उपाय हैं— प्रथम सब प्रकारसे पतिको प्रसन्न रखना और द्वितीय आचरणकी पवित्रता। पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे जैसी प्रीति पतिकी स्त्रीपर होती है वैसी प्रीति रूपसे, यौवनसे और अलंकारादि

आभूषणोंसे नहीं होती* । क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि उत्तम रूप और युवावस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके विपरीत आचरण करनेसे दौर्भाग्यको प्राप्त करती हैं और अति कुरूप तथा हीन अवस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे उनकी अत्यन्त प्रिय हो जाती हैं । इसलिये पतिके चित्तका अभिप्राय भलीभाँति समझना और उसके अनुकूल आचरण करना यही स्त्रियोंके लिये सब सुखोंका हेतु है तथा यही समस्त श्रेष्ठ योग्यताओंका कारण है । इसके बिना तो स्त्रीके अन्य सभी गुण बन्ध्यत्वको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् निष्फल हो जाते हैं और अनर्थके कारण बन जाते हैं । इसलिये स्त्रीको अपनी योग्यता (परचित्तज्ञता) सर्वथा बढ़ाते रहना चाहिये ।

पतिके आनेका समय जानकर उनके आनेके पूर्व ही वह घरको स्वच्छकर बैठनेके लिये उत्तम आसन बिछा दे तथा पतिदेवके आनेपर स्वयं अपने हाथसे उनके चरण धोकर उन्हें आसनपर बैठाये और पंखा हाथमें लेकर धीरे-धीरे डुलाये तथा सावधान होकर उनकी आज्ञा प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करे । ये सब काम दासी आदिसे न करवाये । पतिके स्नान, आहार, पानादिमें स्पृहा दिखाये । पतिके संकेतोंको समझकर सावधानीपूर्वक सभी कार्योंको करे और भोजनादि निवेदित करे । अपने बन्धु-बान्धवों तथा पतिके बन्धुओं और सपत्नीके साथ स्वागत-सत्कार पतिके इच्छानुसार करे अर्थात् जिसपर पतिकी रुचि न देखे उससे अधिक शिष्टाचार न करे । स्त्रियोंके लिये सभी अवस्थाओंमें स्वकुलकी अपेक्षा पतिकुल ही विशेष पूज्य होता है; क्योंकि कोई भी कुलीन पुरुष अपनी कन्यासे उपकारकी

आशा भी नहीं रखता और जो रखता है वह अनुचित ही है । कन्याका विवाह करनेके बाद फिर उससे अपनी आजीविकाकी इच्छा करना यह महात्मा और कुलीन पुरुषोंकी रीति नहीं है, अतः स्त्रीके सम्बन्धियोंको चाहिये कि वे केवल मित्रताके लिये, प्रीतिके लिये ही सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छा करें और प्रसंगवश यथाशक्ति उसे कुछ देते भी रहें । उससे कोई वस्तु लेनेकी इच्छा न रखें । कन्याके मायकेवालोंको कन्याके स्वामीकी रक्षाका प्रयत्न सर्वथा करना चाहिये, उनके परस्पर प्रीति-सम्बन्धकी चर्चा सर्वत्र करनी चाहिये और अपनी मिथ्या प्रशंसा नहीं करनी चाहिये । साधु-पुरुषोंका व्यवहार अपने सम्बन्धियोंके प्रति ऐसा ही होता है ।

जो स्त्री इस प्रकारके सद्वृत्तको भलीभाँति जानकर व्यवहार करती है, वह पति और उसके बन्धु-बान्धवोंको अत्यन्त मान्य होती है । पतिकी प्रिय, साधु वृत्तवाली तथा सम्बन्धियोंमें प्रसिद्धिको प्राप्त होनेपर भी स्त्रीको लोकापवादसे सर्वदा डरते रहना चाहिये; क्योंकि सीता आदि उत्तम पतिव्रताओंको भी लोकापवादके कारण अनेक कष्ट भोगने पड़े थे । भोग्य होनेके कारण, गुण-दोषोंका ठीक-ठीक निर्णय न कर पानेसे तथा प्रायः अविनयशीलताके कारण स्त्रियोंके व्यवहारको समझना अत्यन्त दुष्कर है । ठीक प्रकारसे दूसरेकी मनोवृत्तिको न समझनेके कारण तथा कपट-दृष्टिके कारण एवं स्वच्छन्द हो जानेसे ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ हैं जो कलंकित नहीं हो जातीं । दैवयोग अथवा कुयोगसे या व्यवहारकी अनभिज्ञतासे शुद्ध हृदयवाली स्त्री भी लोकापवादको प्राप्त हो जाती है । स्त्रियोंका यह दौर्भाग्य ही दुःख भोगनेका कारण है । इसका कोई प्रतीकार नहीं,

* भर्ताधिदेवता नार्या वर्णा ब्राह्मणदेवताः । ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु प्रजा राजन्यदेवताः ॥

तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम् । भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम् ॥

न तथा यौवनं लोके नापि रूपं न भूषणम् । यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम् ॥ (ब्राह्मपर्व १३। ३५—३७)

यदि है तो इसकी ओषधि है उत्तम चरित्रका आचरण और लोक-व्यवहारको ठीकसे समझना।

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! उत्तम आचरणवाली स्त्री भी यदि बुरा सङ्ग करे या अपनी इच्छासे जहाँ चाहे चली जाय तो उसे अवश्य कलंक लगता है और झूठा दोष लगनेसे कुल भी कलंकित हो जाता है। उत्तम कुलकी स्त्रियोंके लिये यह आवश्यक है कि वे किसी भी भाँति अपने कुल—मातृकुल, पितृकुल एवं संततिको कलंक न लगने दें। ऐसी कुलीन स्त्रीसे ही धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी सिद्धि हो सकती है। इसके विपरीत बुरे आचरणवाली स्त्रियाँ अपने कुलोंको नरकमें डालती हैं और चरित्रको ही अपना आभूषण माननेवाली स्त्रियाँ नरकमें गिरे हुआँको भी निकाल लेती हैं। जिन स्त्रियोंका चित्त पतिके अनुकूल है और जिनका उत्तम आचरण है, उनके लिये रत्न, सुवर्ण आदिके आभूषण भारस्वरूप ही हैं अर्थात् स्त्रियोंके यथार्थ आभूषण ये दो हैं—पतिकी अनुकूलता और उत्तम आचरण। जो स्त्री पतिकी और लोककी अपने यथोचित व्यवहारादिसे आराधना करती है अर्थात् पतिके अनुकूल चलती है और लोकव्यवहारको ठीक-ठीक समझकर तदनुकूल आचरण करती है, वह स्त्री धर्म, अर्थ तथा कामकी अबाधसिद्धि प्राप्त कर लेती है—

भर्तृचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम्।

तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम्॥

लोकज्ञाने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शाश्वती।

शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम्॥

तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितौ यया।

धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया॥

(ब्राह्मपर्व १३। ६४—६६)

जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया हो, उस

स्त्रीको अपने पतिकी मङ्गलकामनाके सूचक सौभाग्य-सूत्र आदि स्वल्प आभूषण ही पहनने चाहिये, विशेष शृंगार नहीं करना चाहिये। उसे पतिद्वारा प्रारम्भ किये कार्योंका प्रयत्नपूर्वक सम्पादन करते रहना चाहिये। वह देहका अधिक संस्कार न करे। रात्रिको सास आदि पूज्य स्त्रियोंके समीप सोये। बहुत अधिक खर्च न करे। व्रत, उपवास आदिके नियमोंका पालन करती रहे। दैवज्ञ आदि श्रेष्ठजनोंसे पतिके कुशल-क्षेमका वृत्तान्त जाननेकी कोशिश करे और परदेशमें उसके कल्याणकी कामनासे तथा शीघ्र आगमनकी अभिलाषासे नित्य देवताओंका पूजन करे। अत्यन्त उज्ज्वल वेष न बनाये और न सुगन्धित तैलादि द्रव्योंका प्रयोग करे। उसे सम्बन्धियोंके घर नहीं जाना चाहिये। यदि किसी आवश्यक कार्यवश जाना ही पड़ जाय तो अपनेसे बड़ोंकी आज्ञा लेकर पतिके विश्वसनीय जनोंके साथ जाय। किंतु वहाँ अधिक समयतक न रहे, शीघ्र वापस लौट आये। वहाँ स्नान आदि व्यवहारोंको न करे। प्रवाससे पतिके लौट आनेपर प्रसन्न-मनसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर पतिका यथोचित भोजनादिसे सत्कार करे और देवताओंसे पतिके लिये माँगी गयी मनौतियोंको पूजादिद्वारा यथाविधि सम्पन्न करे।

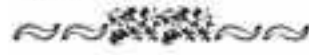
इस प्रकार मन, वाणी तथा कर्मोंसे सभी अवस्थाओंमें पतिका हित-चिन्तन करती रहे, क्योंकि पतिके अनुकूल रहना स्त्रियोंके लिये विशेष धर्म है। अपने सौभाग्यपर अहंकार न करे और उद्धत कार्योंको भी न करे तथा अत्यन्त विनम्रभावसे रहे। इस प्रकारसे पतिकी सेवा करते हुए जो स्त्री पतिके कार्योंमें प्रमाद नहीं करती, पूज्यजनोंका सदा आदर करती रहती है, नौकरोंका भरण-पोषण करती है, नित्य सद्गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये प्रयत्नशील रहती है तथा सब प्रकारसे अपने शीलकी रक्षा करती

रहती है, वह स्त्री इस लोक तथा परलोकमें उत्तम सुख एवं उत्तम कीर्ति प्राप्त करती है^१।

जिस स्त्रीपर पति अति क्रोधयुक्त हो और उसका आदर न करे, वह स्त्री दुर्भगा कहलाती है। उसे चाहिये कि वह नित्य व्रत-उपवासादि क्रियाओंमें संलग्न रहे और पतिके बाह्य कार्योंमें विशेषरूपसे सहयोग करे। जातिसे कोई स्त्री दुर्भगा अथवा सुभगा (सौभाग्यशालिनी) नहीं होती। वह अपने व्यवहारसे ही पतिकी प्रिय और अप्रिय हो जाती है। उत्तम स्त्री पतिके चित्तका अभिप्राय न जाननेसे, उसके प्रतिकूल चलनेसे और लोकविरुद्ध आचरण करनेसे दुर्भगा

हो जाती है एवं उसके अनुकूल चलनेसे सुभगा हो जाती है। मनोवृत्तिके अनुकूल कार्य करनेसे पराया भी प्रिय हो जाता है और मनोऽनुकूल कार्य न करनेसे अपना जन भी शीघ्र शत्रु बन जाता है। इसलिये स्त्रीको मन, वचन तथा अपने कार्योंद्वारा सभी अवस्थाओंमें पतिके अनुसार ही प्रिय आचरण करना चाहिये। इस प्रकार कहे गये स्त्री-वृत्तको भलीभाँति समझकर जो स्त्री पतिकी सेवा करती है, वह पतिको अपना बना लेती है और पतिकी सेवासे सभी सुखों तथा त्रिवर्गको भी प्राप्त कर लेती है^२।

(अ० १०—१५)



पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन तथा व्रत-उपवासोंके प्रकरणमें आहारका निरूपण एवं प्रतिपदा तिथिकी उत्पत्ति, व्रत-विधि और माहात्म्य

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस प्रकार स्त्रियोंके लक्षण और सदाचारका वर्णन करके ब्रह्माजी अपने लोक तथा ऋषिगण भी अपने-अपने आश्रमोंकी ओर चले गये। अब गृहस्थोंको कैसा आचरण करना चाहिये, उसे मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें—

गृहस्थोंको वैवाहिक अग्रिमें विधिपूर्वक गृह्यकर्मोंको करना चाहिये तथा पञ्चमहायज्ञोंका भी सम्पादन करना चाहिये। गृहस्थोंके यहाँ जीव-हिंसा होनेके पाँच स्थान हैं—ओखली, चक्की, चूल्हा, झाड़ू

तथा जल रखनेके स्थान। इस हिंसा दोषसे मुक्ति पानेके लिये गृहस्थोंको पञ्चमहायज्ञों—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) दैवयज्ञ, (४) भूतयज्ञ तथा (५) अतिथियज्ञको नित्य अवश्य करना चाहिये। अध्ययन करना तथा अध्यापन करना यह ब्रह्मयज्ञ है, तर्पणादि कर्म पितृयज्ञ है। देवताओंके लिये हवनादि कर्म दैवयज्ञ है। बलिवैश्वदेव कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि एवं अभ्यागतोंका स्वागत-सत्कार करना अतिथियज्ञ है—

१- एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी। पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च॥
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे। प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्॥

(ब्राह्मपर्व १४। ३१-३२)

२- न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः। व्यवहाराद्भवत्येष निर्देशो रिपुमित्रवत्॥
भर्तृचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तैर्लोकविरुद्धैश्च यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः॥
आनुकूल्यान्मनोवृत्तेः परोऽपि प्रियतां व्रजेत्। प्रातिकूल्यान्निजोऽप्याशु प्रियः प्रद्वेषतामियात्॥
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः। प्रियं समाचरेन्नित्यं तच्चित्तानुविधायिनी॥
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति। पतिमाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति॥

(ब्राह्मपर्व १५। १६—१९, ३२)

[वर्तमान समयमें पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावसे देशमें दूषित और उच्छृङ्खलतापूर्ण वातावरण बन गया है। स्त्रियोंसे सम्बद्ध भविष्यपुराणका यह उल्लेख रामायण, महाभारत, स्मृतियों तथा अन्य पुराणोंमें भी उपलब्ध है। आजके विश्वकी सभी समस्याओंका एकमात्र मुख्य कारण आचारका पतन है, इसका प्रभाव संततियोंपर भी पड़ता है। अतः सभीको सदाचरणपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतस्तथाऽन्योऽतिथिपूजनम् ॥

(ब्राह्मपर्व १६।७)

—इन पाँच नियमोंका पालन करनेवाला गृहस्थी घरमें रहता हुआ भी पञ्चसूना-दोषोंसे लिप्त नहीं होता। यदि समर्थ होते हुए भी वह इन पाँच यज्ञोंको नहीं करता है तो उसका जीवन ही व्यर्थ है।

राजा शतानीकने पूछा—जिस ब्राह्मणके घरमें अग्निहोत्र नहीं होता, वह मृतकके समान होता है—यह आपने कहा है, परंतु फिर वह देवपूजा आदि कार्योंको क्यों करे? और यदि ऐसी बात है तो देवता, पितर उससे कैसे संतुष्ट होंगे, इसका आप निराकरण करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जिन ब्राह्मणोंके घरमें अग्निहोत्र न हो उनका उद्धार व्रत, उपवास, नियम, दान तथा देवताकी स्तुति, भक्ति आदिसे होता है। जिस देवताकी जो तिथि हो, उसमें उपवास करनेसे वे देवता उसपर विशेषरूपसे प्रसन्न होते हैं—

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप ।
देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः ॥
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते ।
प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन ॥

(ब्राह्मपर्व १६।१३-१४)

राजाने फिर कहा—महाराज! अब आप अलग-अलग तिथियोंमें किये जानेवाले व्रतों, तिथि-व्रतोंमें किये जानेवाले भोजनों तथा उपवासकी विधियोंका वर्णन करें, जिनके श्रवणसे तथा जिनका आचरण कर संसारसागरसे मैं मुक्त हो जाऊँ तथा मेरे सभी पाप दूर हो जायँ। साथ ही संसारके जीवोंका भी कल्याण हो जाय।

सुमन्तु मुनि बोले—मैं तिथियोंमें विहित कृत्योंका

वर्णन करता हूँ, जिनके सुननेसे पाप कट जाते हैं और उपवासके फलोंकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रतिपदा तिथिको दूध तथा द्वितीयाको लवणरहित भोजन करे। तृतीयाके दिन तिलान्न भक्षण करे। इसी प्रकार चतुर्थीको दूध, पञ्चमीको फल, षष्ठीको शाक, सप्तमीको बिल्वाहार करे। अष्टमीको पिष्ट, नवमीको अनग्निपाक, दशमी और एकादशीको घृताहार करे। द्वादशीको खीर, त्रयोदशीको गोमूत्र, चतुर्दशीको यवान्न भक्षण करे। पूर्णिमाको कुशाका जल पीये तथा अमावास्याको हविष्य-भोजन करे। यह सब तिथियोंके भोजनकी विधि है। इस विधिसे जो पूरे एक पक्ष भोजन करता है, वह दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है और मन्वन्तरतक स्वर्गमें आनन्द भोगता है। यदि तीन-चार मासतक इस विधिसे भोजन करे तो वह सौ अश्वमेध और सौ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है तथा स्वर्गमें अनेक मन्वन्तरोत्तक सुख-भोग करता है। पूरे आठ महीने इस विधिसे भोजन करे तो हजार यज्ञोंका फल पाता है और चौदह मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें वहाँके सुखोंका उपभोग करता है। इसी प्रकार यदि एक वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक इस भोजन-विधिका पालन करता है तो वह सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोत्तक आनन्दपूर्वक निवास करता है। इस उपवास-विधिमें चारों वर्णों तथा स्त्री-पुरुषों—सभीका अधिकार है। जो इन तिथि-व्रतोंका आरम्भ आश्विनकी नवमी, माघकी सप्तमी, वैशाखकी तृतीया तथा कार्तिककी पूर्णिमासे करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त होता है। पूर्वजन्ममें जिन पुरुषोंने व्रत, उपवास आदि किया, दान दिया, अनेक प्रकारसे ब्राह्मणों, साधु-संतों एवं तपस्वियोंको संतुष्ट किया, माता-पिता और गुरुकी सेवा-शुश्रूषा की, विधिपूर्वक तीर्थयात्रा की, वे पुरुष स्वर्गमें दीर्घ कालतक रहकर जब पृथ्वीपर जन्म लेते हैं,

तब उनके चिह्न—पुण्य-फल प्रत्यक्ष ही दिखलायी पड़ते हैं। यहाँ उन्हें हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, सुवर्ण, रत्न, कंकण, केयूर, हार, कुण्डल, मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ सुन्दर स्त्री तथा अच्छे सेवक प्राप्त होते हैं। वे आधि-व्याधिसे मुक्त होकर दीर्घायु होते हैं। पुत्र-पौत्रादिका सुख देखते हैं और वन्दीजनोंके स्तुति-पाठद्वारा जगाये जाते हैं। इसके विपरीत जिसने व्रत, दान, उपवास आदि सत्कर्म नहीं किया वह काना, अंधा, लूला, लँगड़ा, गूँगा, कुबड़ा तथा रोग और दरिद्रतासे पीड़ित रहता है। संसारमें आज भी इन दोनों प्रकारके पुरुष प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। यही पुण्य और पापकी प्रत्यक्ष परीक्षा है।

राजाने कहा—प्रभो! आपने अभी संक्षेपमें तिथियोंको बताया है। अब यह विस्तारसे बतलानेकी कृपा करें कि किस देवताकी किस तिथिमें पूजा करनी चाहिये और व्रत आदि किस विधिसे करने चाहिये जिनके करनेसे मैं पवित्र हो जाऊँ और द्वन्द्वरहित होकर यज्ञके फलोंको प्राप्त कर सकूँ*।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! तिथियोंका रहस्य, पूजाका विधान, फल, नियम, देवता तथा अधिकारी आदिके विषयमें मैं बताता हूँ, यह सब आजतक मैंने किसीको नहीं बतलाया, इसे आप सुनें—

सबसे पहले मैं संक्षेपमें सृष्टिका वर्णन करता हूँ। प्रथम परमात्माने जल उत्पन्नकर उसमें तेज प्रविष्ट किया, उससे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे उस अण्डके एक कपालसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की। तदनन्तर दिशा, उपदिशा, देवता, दानव आदि रचे और जिस दिन यह सब काम किया उसका नाम प्रतिपदा तिथि रखा। ब्रह्माजीने इसे सर्वोत्तम माना और सभी तिथियोंके प्रारम्भमें इसका प्रतिपादन

किया इसलिये इसका नाम प्रतिपदा हुआ। इसीके बाद सभी तिथियाँ उत्पन्न हुईं।

अब मैं इसके उपवास-विधि और नियमोंका वर्णन करता हूँ। कार्तिक-पूर्णिमा, माघ-सप्तमी तथा वैशाख शुक्ल तृतीयासे इस प्रतिपदा तिथिके नियम एवं उपवासोंको विधिपूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये। यदि प्रतिपदा तिथिसे नियम ग्रहण करना है तो प्रतिपदासे पूर्व चतुर्दशी तिथिको भोजनके अनन्तर व्रतका संकल्प लेना चाहिये। अमावास्याको त्रिकाल स्नान करे, भोजन न करे और गायत्रीका जप करता रहे। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल गन्ध-माल्य आदि उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें यथाशक्ति दूध दे तथा बादमें 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा कहे। स्वयं भी बादमें गायका दूध पिये। इस विधिसे एक वर्षतक व्रत कर अन्तमें गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर व्रत समाप्त करे।

इस विधानसे व्रत करनेपर व्रतीके सब पाप दूर हो जाते हैं और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह दिव्य शरीर धारणकर विमानमें बैठकर देवलोकमें देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है और जब इस पृथ्वीपर सत्ययुगमें जन्म लेता है तो दस जन्मतक वेदविद्याका पारगामी विद्वान्, धनवान्, दीर्घ आयुष्य, आरोग्यवान्, अनेक भोगोंसे सम्पन्न, यज्ञ करनेवाला, महादानी ब्राह्मण होता है। विश्वामित्रमुनिने ब्राह्मण होनेके लिये बहुत समयतक घोर तपस्या की, किंतु उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सका। अतः उन्होंने नियमसे इसी प्रतिपदाका व्रत किया। इससे थोड़ेसे समयमें ब्रह्माजीने उन्हें ब्राह्मण बना दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कोई इस तिथिका व्रत

* नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकारके कर्म होते हैं। यहाँ काम्य-कर्मोंका प्रकरण चल रहा है। इन्हीं कर्मोंको निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति भी मिल जाती है।

करे तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। हैहय, तालजंघ, तुरुष्क, यवन, शक आदि म्लेच्छ जातिवाले भी इस व्रतके प्रभावसे ब्राह्मण हो सकते हैं। यह तिथि परम

पुण्य और कल्याण करनेवाली है। जो इसके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है वह ऋद्धि, वृद्धि और सत्कीर्ति पाकर अन्तमें सद्गति प्राप्त करता है^१। (अध्याय १६)



प्रतिपत्कल्प-निरूपणमें ब्रह्माजीकी पूजा-अर्चाकी महिमा

राजा शतानीकने कहा—ब्रह्मन्! आप प्रतिपदा तिथिमें किये जानेवाले कृत्य, ब्रह्माजीके पूजनकी विधि और उसके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! पूर्वकल्पमें स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्के नष्ट हो जानेपर सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रकट हुए और उन्होंने अनेक लोकों, देवगणों तथा विविध प्राणियोंकी सृष्टि की। प्रजापति ब्रह्मा देवताओंके पिता तथा अन्य जीवोंके पितामह हैं, इसलिये इनकी सदा पूजा करनी चाहिये। ये ही जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले हैं। इनके मनसे रुद्रका, वक्षःस्थलसे विष्णुका आविर्भाव हुआ। इनके चारों मुखोंसे अपने छः अङ्गोंके साथ चारों वेद प्रकट हुए। सभी देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि इनकी पूजा करते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है और ब्रह्ममें स्थित है, अतः ब्रह्माजी सबसे पूज्य हैं। राज्य, स्वर्ग और मोक्ष—ये तीनों पदार्थ इनकी सेवा करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये सदा प्रसन्नचित्तसे यावज्जीवन नियमसे ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। जो ब्रह्माजीकी सदा भक्तिसे पूजा करता है, वह मनुष्य-स्वरूपमें साक्षात् ब्रह्मा ही है। ब्रह्माजीकी पूजासे अधिक पुण्य किसीमें न समझकर सदा ब्रह्माजीका पूजन करते रहना चाहिये। जो ब्रह्माजीका मन्दिर बनवाकर

उसमें विधिपूर्वक ब्रह्माजीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह यज्ञ, तप, तीर्थ, दान आदिके फलोंसे करोड़ों गुना अधिक फल प्राप्त करता है। ऐसे पुरुषके दर्शन और स्पर्शसे इक्कीस पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजीकी पूजा करनेवाला पुरुष बहुत कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वहाँ निवास करनेके पश्चात् वह ज्ञानयोगके माध्यमसे मुक्त हो जाता है अथवा भोग चाहनेपर मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती राजा या वेद-वेदाङ्गपारङ्गत कुलीन ब्राह्मण होता है। किसी अन्य कठोर तप और यज्ञोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल ब्रह्माजीकी पूजासे ही सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। जो ब्रह्माजीके मन्दिरमें छोटे जीवोंकी रक्षा करता हुआ सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे झाड़ू देता है तथा उपलेपन करता है, वह चान्द्रायण-व्रतका फल प्राप्त करता है। एक पक्षतक ब्रह्माजीके मन्दिरमें जो झाड़ू लगाता है, वह सौ करोड़ युगसे भी अधिक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है और अनन्तर सर्वगुणसम्पन्न, चारों वेदोंका ज्ञाता धर्मात्मा राजाके रूपमें पृथ्वीपर आता है। भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका पूजन न करनेतक ही मनुष्य संसारमें भटकता है। जिस तरह मानवका मन विषयोंमें मग्न होता है, वैसे ही यदि ब्रह्माजीमें मन निमग्न रहे तो ऐसा कौन पुरुष होगा जो मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता^२। ब्रह्माजीके जीर्ण एवं खण्डित मन्दिरका

१- इसका वर्णन ठीक इसी प्रकार वराहपुराणमें इससे भी अधिक विस्तारसे मिलता है और मुहूर्त-चिन्तामणि एवं अन्य ज्योतिषग्रन्थोंमें भी रमणीयतापूर्वक प्रपञ्चित है। व्रतकल्पद्रुम, व्रतरत्नाकर, व्रतराज आदिमें भी संगृहीत है।

२- समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे। यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात् ॥ (ब्राह्मपर्व १७।४०)

उद्धार करनेवाला प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है। ब्रह्माजीके समान न कोई देवता है न गुरु, न ज्ञान है और न कोई तप ही है।

प्रतिपदा आदि सभी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा कर पूर्णिमाके दिन विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये तथा शङ्ख, घण्टा, भेरी आदि वाद्य-ध्वनियोंके साथ आरती एवं स्तुति करनी चाहिये। इस प्रकार व्यक्ति जितने पर्वोंपर आरती करता है, उतने हजार युगतक ब्रह्मलोकमें निवास और आनन्दका उपभोग करता है। कपिला गौके पञ्चगव्य और कुशाके जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा ब्रह्माजीको स्नान कराना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। अन्य स्नानोंसे सौ गुना पुण्य इसमें अधिक होता है। यज्ञ एवं अग्निहोत्रादिके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको कपिला गौ रखनी चाहिये। ब्रह्माजीकी मूर्तिका कपिला गायके घृतसे अभ्यङ्ग करना चाहिये, इससे करोड़ों वर्षोंके किये गये पापोंका विनाश होता है। यदि प्रतिपदाके दिन कोई एक बार भी घीसे स्नान कराता है तो उसके इक्कीस पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। सुवर्ण-वस्त्रादिसे अलंकृत दस हजार सवत्सा गौ वेदज्ञ ब्राह्मणोंको देनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य ब्रह्माजीको दुग्धसे स्नान करानेसे प्राप्त होता है। एक बार भी दूधसे ब्रह्माजीको स्नान करानेवाला पुरुष सुवर्णके विमानमें विराजमान हो ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है। दहीसे स्नान करानेपर विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। शहदसे स्नान करानेपर वीरलोक (इन्द्रलोक)-की प्राप्ति होती है। ईखके रससे स्नान करानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। शुद्धोदकसे स्नान करानेपर सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वस्त्रसे छने हुए जलसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर वह सदा

तृप्त रहता है और सम्पूर्ण विश्व उसके वशीभूत हो जाता है। सर्वौषधियोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोक, चन्दनके जलसे स्नान करानेपर रुद्रलोक, कमलके पुष्प, नीलकमल, पाटला (लोध्र-लाल), कनेर आदि सुगन्धित पुष्पोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कपूर और अगरके जलसे स्नान करानेपर या गायत्रीमन्त्रसे सौ बार जलको अभिमन्त्रित कर उस जलसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। शीतल जल या कपिला गायके धारोष्ण दुग्धसे स्नान करानेके अनन्तर घृतसे स्नान करानेसे सभी पापोंसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। इन तीनों स्नानोंको सम्पन्न कर भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे पूजकको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा ताँबेके घटसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर सौगुना, चाँदीके घटसे लाखगुना फल होता है और सुवर्ण-कलशसे स्नान करानेपर कोटिगुना फल प्राप्त होता है। ब्रह्माजीके दर्शनसे उनका स्पर्श करना श्रेष्ठ है, स्पर्शसे पूजन और पूजनसे घृतस्नान अधिक फलदायक है। सभी वाचिक और मानसिक पाप घृतस्नान करानेसे नष्ट हो जाते हैं।

राजन्! इस विधिसे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा इस प्रकार करनी चाहिये—पवित्र वस्त्र पहनकर, आसनपर बैठ सम्पूर्ण न्यास करना चाहिये। प्रथम चार हाथ विस्तृत स्थानमें एक अष्टदल-कमलका निर्माण करे। उसके मध्य नाना वर्णयुक्त द्वादशदल-यन्त्र लिखे और पाँच रंगोंसे उसको भरे। इस प्रकार यन्त्र-निर्माणकर गायत्रीके वर्णोंसे न्यास करे।

गायत्रीके अक्षरोंद्वारा शरीरमें न्यास कर देवताके शरीरमें भी न्यास करना चाहिये। प्रणवयुक्त गायत्री-मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित केसर, अगर,

चन्दन, कपूर आदिसे समन्वित जलसे सभी पूजाद्रव्योंका मार्जन करना चाहिये। अनन्तर पूजा करनी चाहिये। प्रणवका उच्चारण कर पीठस्थापन और प्रणवसे ही तेजःस्वरूप ब्रह्माजीका आवाहन करना चाहिये। पद्मपर विराजमान, चार मुखोंसे

युक्त चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले श्रीब्रह्माजीका ध्यान कर पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन भक्तिपूर्वक गायत्री-मन्त्रसे ब्रह्माजीका पूजन करता है, वह चिरकालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है। (अध्याय १७)



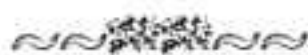
ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा— हे राजा शतानीक! कार्तिक मासमें जो ब्रह्माजीकी रथयात्राका उत्सव करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कार्तिककी पूर्णिमाको मृगचर्मके आसनपर सावित्रीके साथ ब्रह्माजीको रथमें विराजमान करे और विविध वाद्य-ध्वनिके साथ रथयात्रा निकाले। विशिष्ट उत्सवके साथ ब्रह्माजीको रथपर बैठाये और रथके आगे ब्रह्माजीके परम भक्त ब्राह्मण शाण्डिलीपुत्रको स्थापित कर उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्ति एवं पुण्याहवाचन कराये। उस रात्रि जागरण करे। नृत्य-गीत आदि उत्सव एवं विविध क्रीडाएँ ब्रह्माजीके सम्मुख प्रदर्शित करे।

इस प्रकार रात्रिमें जागरण कर प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल ब्रह्माजीका पूजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, अनन्तर पुण्य शब्दोंके साथ रथयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये।

चारों वेदोंके ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण उस रथको खींचें और रथके आगे वेद पढ़ते हुए ब्राह्मण चलते रहें। ब्रह्माजीके दक्षिण-भागमें सावित्री तथा वाम-भागमें भोजककी स्थापना करे। रथके आगे शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि विविध वाद्य बजते रहें। इस प्रकार सारे नगरमें रथको घुमाना चाहिये और नगरकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये, अनन्तर उसे

अपने स्थानपर ले आना चाहिये। आरती करके ब्रह्माजीको उनके मन्दिरमें स्थापित करे। इस रथयात्राको सम्पन्न करनेवाले, रथको खींचनेवाले तथा इसका दर्शन करनेवाले सभी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। दीपावलीके दिन ब्रह्माजीके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। दूसरे दिन प्रतिपदाको ब्रह्माजीकी पूजा करके स्वयं भी वस्त्र-आभूषणसे अलंकृत होना चाहिये। यह प्रतिपदा तिथि ब्रह्माजीको बहुत प्रिय है। इसी तिथिसे बलिके राज्यका आरम्भ हुआ है। इस दिन ब्रह्माजीका पूजनकर ब्राह्मण-भोजन करानेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। चैत्र मासमें कृष्णप्रतिपदाके दिन (होली जलानेके दूसरे दिन) चाण्डालका स्पर्शकर स्नान करनेसे सभी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। उस दिन गौ, महिष आदिको अलंकृतकर उन्हें मण्डपके नीचे रखना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। चैत्र, आश्विन और कार्तिक इन तीनों महीनोंकी प्रतिपदा श्रेष्ठ है, किंतु इनमें कार्तिककी प्रतिपदा विशेष श्रेष्ठ है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सौ गुने फलको देता है। राजा बलिको इसी दिन राज्य मिला था, इसलिये कार्तिककी प्रतिपदा श्रेष्ठ मानी जाती है। (अध्याय १८)



द्वितीया-कल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा एवं पुष्पद्वितीया-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—द्वितीया तिथिको च्यवन-ऋषिने इन्द्रके सम्मुख यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया था।

राजाने पूछा—महाराज! इन्द्रके सम्मुख किस विधिसे अश्विनीकुमारोंको उन्होंने सोमरस पिलाया? क्या च्यवन-ऋषिकी तपस्याके प्रभावकी प्रबलतासे इन्द्र कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हुए?

सुमन्तु मुनिने कहा—सत्ययुगकी पूर्वसंध्यामें गङ्गाके तटपर समाधिस्थ हो च्यवनमुनि बहुत दिनोंसे तपस्यामें रत थे। एक समय अपनी सेना और अन्तःपुरके परिजनोंको साथ लेकर महाराज शर्याति गङ्गा-स्नानके लिये वहाँ आये। उन्होंने च्यवन-ऋषिके आश्रमके* समीप आकर गङ्गा-स्नान सम्पन्न किया तथा देवताओंकी आराधना की और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब वे अपने नगरकी ओर जानेको उद्यत हुए तो उसी समय उनकी सभी सेनाएँ व्याकुल हो गयीं और मूत्र तथा विष्ठा उनके अचानक ही बंद हो गये, आँखोंसे कुछ भी नहीं दिखायी दिया। सेनाकी यह दशा देखकर राजा घबड़ा उठे। राजा शर्याति प्रत्येक व्यक्तिसे पूछने लगे—यह तपस्वी च्यवनमुनिका पवित्र आश्रम है, किसीने कुछ अपराध तो नहीं किया? उनके इस प्रकार पूछनेपर किसीने कुछ भी नहीं कहा।

सुकन्याने अपने पितासे कहा—महाराज! मैंने एक आश्चर्य देखा, जिसका मैं वर्णन कर रही हूँ। अपनी सहेलियोंके साथ मैं वन-विहार कर रही थी

कि एक ओरसे मुझे यह शब्द सुनायी पड़ा—‘सुकन्ये! तुम इधर आओ, तुम इधर आओ।’ यह सुनकर मैं अपनी सखियोंके साथ उस शब्दकी ओर गयी। वहाँ जाकर मैंने एक बहुत ऊँचा वल्मीक देखा।



उसके अंदरके छिद्रोंमें दीपकके समान देदीप्यमान दो पदार्थ मुझे दिखलायी पड़े। उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये पद्मरागमणिके समान क्या चमक रहे हैं। मैंने अपनी मूर्खता और चञ्चलतासे कुशाके अग्रभागसे वल्मीकके प्रकाशयुक्त छिद्रोंको बंध दिया, जिससे वह तेज शान्त हो गया।

यह सुनकर राजा बहुत व्याकुल हो गये और अपनी कन्या सुकन्याको लेकर वहाँ गये जहाँ च्यवनमुनि तपस्यामें रत थे। च्यवन-ऋषिको वहाँ

* अन्य पुराणोंमें तथा महाभारतके अनुसार यह आश्रम सोनभद्र और वधूसरा नदीके संगमपर था, जो आज देवकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। प्रायः पुराणोंमें यह श्लोक भी प्राप्त होता है—

मगधे तु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुना। च्यवनस्य आश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम् ॥

तथा—

वधूसरेति सरिता च्यवनस्याश्रमं प्रति।

समाधिस्थ होकर बैठे हुए इतने दिन व्यतीत हो गये थे कि उनके ऊपर वल्मीक बन गया था। जिन तेजस्वी छिद्रोंको सुकन्याने कुशके अग्रभागसे बौंध दिया था, वे उस महातपस्वीके प्रकाशमान नेत्र थे। राजा वहाँ पहुँचकर अतिशय दीनताके साथ विनती करने लगे।

राजा बोले—महाराज! मेरी कन्यासे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। कृपाकर क्षमा करें।

च्यवनमुनिने कहा—अपराध तो मैंने क्षमा किया, परंतु अपनी कन्याका मेरे साथ विवाह कर दो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है। मुनिका वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सुकन्याका च्यवन-ऋषिसे विवाह कर दिया। सभी सेनाएँ सुखी हो गयीं और मुनिको प्रसन्नकर सुखपूर्वक राजा अपने नगरमें आकर राज्य करने लगे। सुकन्या भी विवाहके बाद भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी। राजवस्त्र, आभूषण उसने उतार दिये और वृक्षकी छाल तथा मृगचर्म धारण कर लिया। इस प्रकार मुनिकी सेवा करते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया और वसन्त-ऋतु आयी। किसी दिन मुनिने संतान-प्राप्तिके लिये अपनी पत्नी सुकन्याका आह्वान किया। इसपर सुकन्याने अतिशय विनयभावसे विनती की।

सुकन्या बोली—महाराज! आपकी आज्ञा मैं किसी प्रकार भी टाल नहीं सकती, किंतु इसके लिये आपको युवावस्था तथा सुन्दर वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत कमनीय स्वरूप धारण करना चाहिये।

च्यवनमुनिने उदास होकर कहा—न मेरा उत्तम रूप है और न तुम्हारे पिताके समान मेरे पास धन है, जिससे सभी भोग-सामग्रियोंको मैं एकत्र कर सकूँ।

सुकन्या बोली—महाराज! आप अपने तपके प्रभावसे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। आपके लिये

यह कौन-सी बड़ी बात है?

च्यवनमुनिने कहा—राजपुत्रि! इस कामके लिये मैं अपनी तपस्या व्यर्थ नहीं करूँगा। इतना कहकर वे पहलेकी तरह तपस्या करने लगे। सुकन्या भी उनकी सेवामें तत्पर हो गयी।

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होनेके बाद अश्विनीकुमार उसी मार्गसे चले जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सुकन्यापर पड़ी।

अश्विनीकुमारोंने कहा—भद्रे! तुम कौन हो? और इस घोर वनमें अकेली क्यों रहती हो?

सुकन्याने कहा—मैं राजा शर्यातिकी सुकन्या नामकी पुत्री हूँ। मेरे पति च्यवन-ऋषि यहाँ तपस्या कर रहे हैं, उन्हींकी सेवाके लिये मैं यहाँ उनके समीप रहती हूँ। कहिये, आपलोग कौन हैं?

अश्विनीकुमारोंने कहा—हम देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं। इस वृद्ध पतिसे तुम्हें क्या सुख मिलेगा? हम दोनोंमें किसी एकका वरण कर लो।

सुकन्याने कहा—देवताओ! आपका ऐसा कहना ठीक नहीं। मैं पतिव्रता हूँ और सब प्रकारसे अनुरक्त होकर दिन-रात अपने पतिकी सेवा करती हूँ।

अश्विनीकुमारोंने कहा—यदि ऐसी बात है तो हम तुम्हारे पतिदेवको अपने उपचारके द्वारा अपने समान स्वस्थ एवं सुन्दर बना देंगे और जब हम तीनों गङ्गामें स्नानकर बाहर निकलें फिर जिसे तुम पतिरूपमें वरण करना चाहो कर लेना।

सुकन्याने कहा—मैं बिना पतिकी आज्ञाके कुछ नहीं कह सकती।

अश्विनीकुमारोंने कहा—तुम अपने पतिसे पूछ आओ, तबतक हम यहीं प्रतीक्षामें रहेंगे। सुकन्याने च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। अश्विनीकुमारोंकी बात स्वीकार कर च्यवनमुनि सुकन्याको लेकर उनके पास आये।

च्यवनमुनिने कहा—अश्विनीकुमारो! आपकी

शर्त हमें स्वीकार है। आप हमें उत्तम रूपवान् बना दें, फिर सुकन्या चाहे जिसे वरण करे। च्यवनमुनिके इतना कहनेपर अश्विनीकुमार च्यवनमुनिको लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रविष्ट हो गये और कुछ देर बाद तीनों ही बाहर निकले। सुकन्याने देखा कि ये तीनों तो समान रूप, समान अवस्था तथा समान वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हैं, फिर इनमें मेरे पति च्यवनमुनि कौन हैं? वह कुछ निश्चित न कर सकी और व्याकुल हो अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना करने लगी।

सुकन्या बोली—देवो! अत्यन्त कुरूप पतिदेवका भी मैंने परित्याग नहीं किया था। अब तो आपकी कृपासे उनका रूप आपके समान सुन्दर हो गया है, फिर मैं कैसे उनका परित्याग कर सकती हूँ। मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये।

सुकन्याकी इस प्रार्थनासे अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने देवताओंके चिह्नोंको धारण



कर लिया। सुकन्याने देखा कि तीन पुरुषोंमेंसे दोकी पलकें गिर नहीं रही हैं और उनके चरण भूमिको स्पर्श नहीं कर रहे हैं, किंतु जो तीसरा

पुरुष है, वह भूमिपर खड़ा है और उसकी पलकें भी गिर रही हैं। इन चिह्नोंको देखकर सुकन्याने निश्चित कर लिया कि ये तीसरे पुरुष ही मेरे स्वामी च्यवनमुनि हैं। तब उसने उनका वरण कर लिया। उसी समय आकाशसे उसपर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देवगण दुन्दुभि बजाने लगे।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंसे कहा—देवो! आप लोगोंने मुझपर बहुत उपकार किया है, जिसके फलस्वरूप मुझे उत्तम रूप और उत्तम पत्नी प्राप्त हुई। अब मैं आपलोगोंका क्या प्रत्युपकार करूँ, क्योंकि जो उपकार करनेवालेका प्रत्युपकार नहीं करता, वह क्रमसे इक्कीस नरकोंमें जाता है*, इसलिये आपका मैं क्या प्रिय करूँ, आप लोग कहें।

अश्विनीकुमारोंने उनसे कहा—महात्मन्! यदि आप हमारा प्रिय करना ही चाहते हैं तो अन्य देवताओंकी तरह हमें भी यज्ञभाग दिलवाइये। च्यवनमुनिने यह बात स्वीकार कर ली, फिर वे उन्हें बिदाकर अपनी भार्या सुकन्याके साथ अपने आश्रममें आ गये।

राजा शर्यातिको जब यह सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे भी रानीको साथ लेकर सुन्दर रूप-प्राप्त महातेजस्वी च्यवन-ऋषिको देखने आश्रममें आये। राजाने च्यवनमुनिको प्रणाम किया और उन्होंने भी राजाका स्वागत किया। सुकन्याने अपनी माताका आलिङ्गन किया। राजा शर्याति अपने जामाता महामुनि च्यवनका उत्तम रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

च्यवनमुनिने राजासे कहा—राजन्! एक महायज्ञकी सामग्री एकत्र कीजिये, हम आपसे यज्ञ करायेंगे। च्यवनमुनिकी आज्ञा प्राप्तकर राजा शर्याति अपनी राजधानी लौट आये और यज्ञ-सामग्री एकत्रकर यज्ञकी तैयारी करने लगे। मन्त्री,

* उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः॥ एकविंशत् स गच्छेच्च नरकाणि क्रमेण वै। (ब्राह्मपर्व १९।५०-५१)

पुरोहित और आचार्यको बुलाकर यज्ञकार्यके लिये उन्हें नियुक्त किया। च्यवनमुनि भी अपनी पत्नी सुकन्याको लेकर यज्ञ-स्थलमें पधारे।

सभी ऋषिगणोंको आमन्त्रण देकर यज्ञमें बुलाया गया। विधिपूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हुआ। ऋत्विक् अग्निकुण्डमें स्वाहाकारके साथ देवताओंको आहुति देने लगे। सभी देवता अपना-अपना यज्ञ-भाग लेने वहाँ आ पहुँचे। च्यवनमुनिके कहनेसे अश्विनीकुमार भी वहाँ आये। देवराज इन्द्र उनके आनेका प्रयोजन समझ गये।

इन्द्र बोले—मुने! ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, इसलिये ये यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हैं, आप इन्हें आहुतियाँ प्रदान न करवायें।

च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये देवता हैं और इनका मेरे ऊपर बड़ा उपकार है, ये मेरे ही



आमन्त्रणपर यहाँ पधारे हैं, इसलिये मैं इन्हें अवश्य यज्ञ-भाग दूँगा। यह सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो उठे और कठोर स्वरमें कहने लगे।

इन्द्र बोले—यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो वज्रसे तुमपर मैं प्रहार करूँगा। इन्द्रकी ऐसी वाणी सुनकर च्यवनमुनि किंचित् भी भयभीत

नहीं हुए और उन्होंने अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग दे ही दिया, तब तो इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने ज्यों ही च्यवनमुनिपर प्रहार करनेके लिये अपना वज्र उठाया त्यों ही च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र हाथमें वज्र लिये खड़े ही रह गये।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली और यज्ञको पूर्ण किया। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी उपस्थित हुए।

ब्रह्माजीने च्यवनमुनिसे कहा—महामुने! आप इन्द्रको स्तम्भन-मुक्त कर दें। अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग दे दें। इन्द्रने भी स्तम्भनसे मुक्त करनेके लिये प्रार्थना की।

इन्द्रने कहा—मुने! आपके तपकी प्रसिद्धिके लिये ही मैंने इन अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग लेनेसे रोका था, अब आजसे सब यज्ञोंमें अन्य देवताओंके साथ अश्विनीकुमारोंको भी यज्ञ-भाग मिला करेगा और इनको देवत्व भी प्राप्त होगा। आपके इस तपके प्रभावको जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी उत्तम रूप एवं यौवनको प्राप्त करेगा। इतना कहकर देवराज इन्द्र देवलोकको चले गये और च्यवनमुनि सुकन्या तथा राजा शर्यातिके साथ आश्रमपर लौट आये।

वहाँ उन्होंने देखा कि बहुत उत्तम-उत्तम महल बन गये हैं, जिनमें सुन्दर उपवन और वापी आदि विहारके लिये बने हुए हैं। भाँति-भाँतिकी शय्याएँ बिछी हुई हैं, विविध रत्नोंसे जटित आभूषणों तथा उत्तम-उत्तम वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। यह देखकर सुकन्यासहित च्यवनमुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने यह सब देवराज इन्द्रद्वारा प्रदत्त समझकर उनकी प्रशंसा की।

महामुनि सुमन्तु राजा शतानीकसे बोले—राजन्! इस प्रकार द्वितीया तिथिके दिन अश्विनीकुमारोंको

देवत्व तथा यज्ञ-भाग प्राप्त हुआ था। अब आप इस द्वितीया तिथिके व्रतका विधान सुनें—

शतानीक बोले—जो पुरुष उत्तम रूपकी इच्छा करे वह कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयासे व्रतको आरम्भ करे और वर्षपर्यन्त संयमित होकर पुष्प-भोजन करे। जो उत्तम हविष्य-पुष्प उस ऋतुमें हों उनका आहार करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सोने-चाँदीके पुष्प बनाकर अथवा कमलपुष्पोंको ब्राह्मणोंको देकर व्रत सम्पन्न करे। इससे अश्विनीकुमार संतुष्ट होकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं। व्रती उत्तम विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें

जाकर कल्पपर्यन्त विविध सुखोंका उपभोग करता है। फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेकर वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता, महादानी, आधि-व्याधियोंसे रहित, पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, उत्तम पत्नीवाला ब्राह्मण होता है अथवा मध्यदेशके उत्तम नगरमें राजा होता है।

राजन्! इस पुष्पद्वितीया-व्रतका विधान मैंने आपको बतलाया। ऐसी ही फल-द्वितीया भी होती है, जिसे अशून्यशयना-द्वितीया भी कहते हैं। फल-द्वितीयाको जो श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, वह ऋद्धि-सिद्धिको प्राप्तकर अपनी भार्यासहित आनन्द प्राप्त करता है। (अध्याय १९)



फल-द्वितीया (अशून्यशयन-व्रत)-का व्रत-विधान और द्वितीया-कल्पकी समाप्ति

राजा शतानीकने कहा—मुने! कृपाकर आप फल-द्वितीयाका विधान कहें, जिसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पति-पत्नीका परस्पर वियोग भी नहीं होता।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! मैं फल-द्वितीयाका विधान कहता हूँ, इसीका नाम अशून्यशयना-द्वितीया भी है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और स्त्री-पुरुषका परस्पर वियोग भी नहीं होता। क्षीरसागरमें लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुके शयन करनेके समय यह व्रत होता है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाके दिन लक्ष्मीके साथ श्रीवत्सधारी भगवान् श्रीविष्णुका पूजन कर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय।

गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥

गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः॥

जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः।

लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान्॥

तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम्।

लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा॥

शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन*।

(ब्राह्मपर्व २०।७—११)

इस प्रकार विष्णुकी प्रार्थना करके व्रत करना चाहिये। जो फल भगवान्को प्रिय हैं, उन्हें भगवान्की शय्यापर समर्पित करना चाहिये और स्वयं भी रात्रिके समय उन्हीं फलोंको खाकर दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुको कौन-से फल प्रिय हैं, आप उन्हें बतायें। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको क्या दान देना चाहिये? उसे भी कहें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! उस ऋतुमें जो भी फल हों और पके हों, उन्हींको भगवान् विष्णुके लिये समर्पित करना चाहिये। कडुवे-कच्चे तथा

* हे श्रीवत्स-चिह्नको धारण करनेवाले लक्ष्मीके स्वामी शाश्वत भगवान् विष्णु! धर्म, अर्थ और कामको पूर्ण करनेवाला मेरा गृहस्थ-आश्रम कभी नष्ट न हो। मेरी गौएँ भी नष्ट न हों न कभी मेरे परिवारके लोग कष्टमें पड़ें एवं न नष्ट हों। मेरे घरकी स्त्रियाँ भी कभी विपत्तियोंमें न पड़ें और हम पति-पत्नीमें भी कभी मतभेद उत्पन्न न हो। हे देव! मैं लक्ष्मीसे कभी वियुक्त न होऊँ और पत्नीसे भी कभी मुझे वियोगकी प्राप्ति न हो। प्रभो! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, उसी प्रकार मेरी शय्या भी कभी शोभारहित एवं लक्ष्मी तथा पत्नीसे शून्य न हो।

खट्टे फल उनकी सेवामें नहीं चढ़ाने चाहिये। भगवान् विष्णुको खजूर, नारिकेल, मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौरा आदि मधुर फलोंको समर्पित करना चाहिये। भगवान् मधुर फलोंसे प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भी इसी प्रकारके मधुर फल, वस्त्र, अन्न तथा सुवर्णका दान देना चाहिये।

इस प्रकार जो पुरुष चार मासतक व्रत करता है,

उसका तीन जन्मोंतक गार्हस्थ्य जीवन नष्ट नहीं होता और न तो ऐश्वर्यकी कमी होती है। जो स्त्री इस व्रतको करती है वह तीन जन्मोंतक न विधवा होती है न दुर्भगा और न पतिसे पृथक् ही रहती है।

इस व्रतके दिन अश्विनीकुमारोंकी भी पूजा करनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार मैंने द्वितीया-कल्पका वर्णन किया है। (अध्याय २०)



तृतीया-कल्पका आरम्भ, गौरी-तृतीया-व्रत-विधान और उसका फल

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! जो स्त्री सब प्रकारका सुख चाहती है, उसे तृतीयाका व्रत करना चाहिये। उस दिन नमक नहीं खाना चाहिये। इस विधिसे उपवासपूर्वक जीवनपर्यन्त इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली स्त्रीको भगवती गौरी संतुष्ट होकर रूप-सौभाग्य तथा लावण्य प्रदान करती हैं। इस व्रतका विधान जो स्वयं गौरीने धर्मराजसे कहा है, उसीका वर्णन मैं करता हूँ, उसे आप सुनें—

भगवती गौरीने धर्मराजसे कहा—धर्मराज! स्त्री-पुरुषोंके कल्याणके लिये मैंने इस सौभाग्य प्राप्त करानेवाले व्रतको बनाया है। जो स्त्री इस व्रतको नियमपूर्वक करती है, वह सदैव अपने पतिके साथ रहकर उसी प्रकार आनन्दका उपभोग करती है, जैसे भगवान् शिवके साथ मैं आनन्दित रहती हूँ। उत्तम पतिकी प्राप्ति के लिये कन्याको यह व्रत करना चाहिये। व्रतमें नमक न खाये। सुवर्णकी गौरी-प्रतिमा स्थापित करके भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो गौरीका पूजन करे। गौरीके लिये नाना प्रकारके नैवेद्य अर्पित करने चाहिये। रात्रिमें लवणरहित भोजन करके स्थापित गौरी-प्रतिमाके समक्ष ही शयन करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस प्रकार जो कन्या व्रत करती है, वह उत्तम पतिको प्राप्त करती है तथा चिरकालतक श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके

साथ उत्तम लोकोंको जाती है।

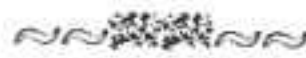
यदि विधवा इस व्रतको करती है तो वह स्वर्गमें अपने पतिको प्राप्त करती है और बहुत समयतक वहाँ रहकर पतिके साथ वहाँके सुखोंका उपभोग करती है एवं पूर्वोक्त सभी सुखोंको भी प्राप्त करती है। देवी इन्द्राणीने पुत्र-प्राप्तिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया था, इसके प्रभावसे उन्हें जयन्त नामका पुत्र प्राप्त हुआ। अरुन्धतीने उत्तम स्थान प्राप्त करनेके लिये इस व्रतका नियम-पालन किया था, जिसके प्रभावसे वे पतिसहित सबसे ऊपरका स्थान प्राप्त कर सकी थीं। वे आजतक आकाशमें अपने पति महर्षि वसिष्ठके साथ दिखायी देती हैं। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणीने अपनी समस्त सपत्नियोंको जीतनेके लिये बिना लवण खाये इस व्रतको किया तो वे अपनी सभी सपत्नियोंमें प्रधान तथा अपने पति चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रिय पत्नी हो गयीं। देवी पार्वतीकी अनुकम्पासे उन्हें अचल सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार यह तृतीया तिथि-व्रत सारे संसारमें पूजित है और उत्तम फल देनेवाला है। वैशाख, भाद्रपद तथा माघ मासकी तृतीया अन्य मासोंकी तृतीयासे अधिक उत्तम है, जिसमें माघ मास तथा भाद्रपद मासकी तृतीया स्त्रियोंको विशेष फल देनेवाली है।

वैशाख मासकी तृतीया सामान्यरूपसे सबके लिये है। यह साधारण तृतीया है। माघ मासकी तृतीयाको गुड़ तथा लवणका दान करना स्त्री-पुरुषोंके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर है। भाद्रपद मासकी तृतीयामें गुड़के बने अपूपों (मालपूआ)-का दान करना चाहिये। भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये माघ मासकी तृतीयाको मोदक और जलका दान करना चाहिये। वैशाख मासकी तृतीयाको चन्दनमिश्रित जल तथा मोदकके दानसे ब्रह्मा तथा सभी देवता प्रसन्न होते हैं। देवताओंने

वैशाख मासकी तृतीयाको अक्षय तृतीया कहा है। इस दिन अन्न-वस्त्र-भोजन-सुवर्ण और जल आदिका दान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसी विशेषताके कारण इस तृतीयाका नाम अक्षय तृतीया है। इस तृतीयाके दिन जो कुछ भी दान किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है और दान देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त करता है। इस तिथिको जो उपवास करता है वह ऋद्धि-वृद्धि और श्रीसे सम्पन्न हो जाता है।

(अध्याय २१)



चतुर्थी-व्रत एवं गणेशजीकी कथा तथा सामुद्रिक शास्त्रका संक्षिप्त परिचय

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! तृतीया-कल्पका वर्णन करनेके अनन्तर अब मैं चतुर्थी-कल्पका वर्णन करता हूँ। चतुर्थी-तिथिमें सदा निराहार रहकर व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणको तिलका दान देकर स्वयं भी तिलका भोजन करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करते हुए दो वर्ष व्यतीत होनेपर भगवान् विनायक प्रसन्न होकर व्रतीको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। उसका भाग्योदय हो जाता है और वह अपार धन-सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है तथा परलोकमें भी अपने पुण्य-फलोंका उपभोग करता है। पुण्य समाप्त होनेके पश्चात् इस लोकमें पुनः आकर वह दीर्घायु, कान्तिमान्, बुद्धिमान्, धृतिमान्, वक्ता, भाग्यवान्, अभीष्ट कार्यो तथा असाध्य कार्योको भी क्षणभरमें ही सिद्ध कर लेनेवाला और हाथी, घोड़े, रथ, पत्नी-पुत्रसे युक्त हो सात जन्मोंतक राजा होता है।

राजा शतानीकने पूछा—मुने! गणेशजीने किसके लिये विघ्न उत्पन्न किया था, जिसके कारण उन्हें विघ्नविनायक कहा गया। आप विघ्नेश तथा उनके द्वारा विघ्न उत्पन्न करनेके कारणको मुझे बतानेका कष्ट करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! एक बार अपने लक्षणशास्त्रके अनुसार स्वामिकार्तिकेयने पुरुषों और स्त्रियोंके श्रेष्ठ लक्षणोंकी रचना की, उस समय गणेशजीने विघ्न किया। इसपर कार्तिकेय क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गणेशका एक दाँत उखाड़ लिया और उन्हें मारनेके लिये उद्यत हो उठे। उस समय भगवान् शङ्करने उनको रोककर पूछा कि तुम्हारे क्रोधका क्या कारण है?

कार्तिकेयने कहा—पिताजी! मैं पुरुषोंके लक्षण बनाकर स्त्रियोंके लक्षण बना रहा था, उसमें इसने विघ्न किया, जिससे स्त्रियोंके लक्षण मैं नहीं बना सका। इस कारण मुझे क्रोध हो आया। यह सुनकर महादेवजीने कार्तिकेयके क्रोधको शान्त किया और हँसते हुए उन्होंने पूछा।

शङ्कर बोले—पुत्र! तुम पुरुषके लक्षण जानते हो तो बताओ, मुझमें पुरुषके कौन-से लक्षण हैं?

कार्तिकेयने कहा—महाराज! आपमें ऐसा लक्षण है कि संसारमें आप कपालीके नामसे प्रसिद्ध होंगे। पुत्रका यह वचन सुनकर महादेवजीको क्रोध हो आया और उन्होंने उनके उस लक्षण-

ग्रन्थको उठाकर समुद्रमें फेंक दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये।

बादमें शिवजीने समुद्रको बुलाकर कहा कि तुम स्त्रियोंके आभूषणस्वरूप विलक्षण लक्षणोंकी रचना करो और कार्तिकेयने जो पुरुष-लक्षणके विषयमें कहा है उसको कहो।

समुद्रने कहा—जो मेरे द्वारा पुरुष-लक्षणका शास्त्र कहा जायगा, वह मेरे ही नाम 'सामुद्रिक शास्त्र' से प्रसिद्ध होगा। स्वामिन्! आपने जो आज्ञा मुझे दी है, वह निश्चित ही पूरी होगी।

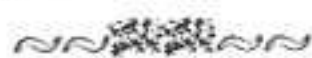
शङ्करजीने पुनः कहा—कार्तिकेय! इस समय तुमने जो गणेशका दाँत उखाड़ लिया है उसे दे दो। निश्चय ही जो कुछ यह हुआ है, होना ही था। दैवयोगसे यह गणेशके बिना सम्भव नहीं था, इसलिये उनके द्वारा यह विघ्न उपस्थित किया गया। यदि तुम्हें लक्षणकी अपेक्षा हो तो समुद्रसे ग्रहण कर लो, किंतु स्त्री-पुरुषोंका यह श्रेष्ठ लक्षण-शास्त्र 'सामुद्र-शास्त्र' इस नामसे ही प्रसिद्ध होगा। गणेशको तुम दाँत-युक्त कर दो।

कार्तिकेयने भगवान् देवदेवेश्वरसे कहा—आपके कहनेसे मैं दाँत तो विनायकके हाथमें दे देता हूँ, किंतु इन्हें इस दाँतको सदैव धारण करना पड़ेगा। यदि इस दाँतको फेंककर ये इधर-उधर घूमेंगे तो

यह फेंका गया दाँत इन्हें भस्म कर देगा। ऐसा कहकर कार्तिकेयने उनके हाथमें दाँत दे दिया। भगवान् देवदेवेश्वरने गणेशको कार्तिकेयकी इस बातको माननेके लिये सहमत कर लिया।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! आज भी भगवान् शङ्करके पुत्र विघ्नकर्ता महात्मा विनायककी प्रतिमा हाथमें दाँत लिये देखी जा सकती है। देवताओंकी यह रहस्यपूर्ण बात मैंने आपसे कही। इसको देवता भी नहीं जान पाये थे। पृथ्वीपर इस रहस्यको जानना तो दुर्लभ ही है। प्रसन्न होकर मैंने इस रहस्यको आपसे तो कह दिया है, किंतु गणेशकी यह अमृतकथा चतुर्थी-तिथिके संयोगपर ही कहनी चाहिये। जो विद्वान् हो, उसे चाहिये कि वह इस कथाको वेदपारङ्गत श्रेष्ठ द्विजों, अपनी क्षत्रियोचित वृत्तिमें लगे हुए क्षत्रियों, वैश्यों और गुणवान् शूद्रोंको सुनाये। जो इस चतुर्थी-व्रतका पालन करता है, उसके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। उसकी दुर्गति नहीं होती और न कहीं वह पराजित होता है। भरतश्रेष्ठ! निर्विघ्नरूपसे वह सभी कार्योंको सम्पन्न कर लेता है, इसमें संदेह नहीं है। उसे ऋद्धि-वृद्धि-ऐश्वर्य भी प्राप्त हो जाता है।

(अध्याय २२)



चतुर्थी-कल्प-वर्णनमें गणेशजीका विघ्न-अधिकार तथा उनकी पूजा-विधि

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—विप्रवर! गणेशजीको गणोंका राजा किसने बनाया और बड़े भाई कार्तिकेयके रहते हुए ये कैसे विघ्नोंके अधिकारी हो गये?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। जिस कारण ये विघ्नकारक हुए हैं और जिन विघ्नोंको करनेसे इस पदपर इनकी नियुक्ति

हुई, वह मैं कह रहा हूँ, उसे आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। पहले कृतयुगमें प्रजाओंकी जब सृष्टि हुई तो बिना विघ्न-बाधाके देखते-ही-देखते सब कार्य सिद्ध हो जाते थे। अतः प्रजाको बहुत अहंकार हो गया। क्लेशरहित एवं अहंकारसे परिपूर्ण प्रजाको देखकर ब्रह्माने बहुत सोच-विचार करके प्रजा-समृद्धिके लिये विनायकको विनियोजित किया।

अतः ब्रह्माके प्रयाससे भगवान् शङ्करने गणेशको उत्पन्न किया और उन्हें गणोंका अधिपति बनाया।

राजन्! जो प्राणी गणेशकी बिना पूजा किये ही कार्य आरम्भ करता है, उसके लक्षण मुझसे सुनिये—वह व्यक्ति स्वप्नमें अत्यन्त गहरे जलमें अपनेको डूबते, स्नान करते हुए या केश मुड़ाये देखता है। काषाय वस्त्रसे आच्छादित तथा हिंसक व्याघ्रादि पशुओंपर अपनेको चढ़ता हुआ देखता है। अन्त्यज, गर्दभ तथा ऊँट आदिपर चढ़कर परिजनोंसे घिरा वह अपनेको जाता हुआ देखता है। जो मानव केकड़ेपर बैठकर अपनेको जलकी तरंगोंके बीच गया हुआ देखता है और पैदल चल रहे लोगोंसे घिरकर यमराजके लोकको जाता हुआ अपनेको स्वप्नमें देखता है, वह निश्चित ही अत्यन्त दुःखी होता है।

जो राजकुमार स्वप्नमें अपने चित्त तथा आकृतिको विकृत रूपमें अवस्थित, करवीरके फूलोंकी मालासे विभूषित देखता है, वह उन भगवान् विघ्नेशके द्वारा विघ्न उत्पन्न कर देनेके कारण पूर्ववंशानुगत प्राप्त राज्यको प्राप्त नहीं कर पाता। कुमारी कन्या अपने अनुरूप पतिको नहीं प्राप्त कर पाती। गर्भिणी स्त्री संतानको नहीं प्राप्त कर पाती है। श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार्यत्वका लाभ नहीं प्राप्त कर पाता और शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें लाभ नहीं प्राप्त होता है और कृषकको कृषि-कार्यमें पूरी सफलता नहीं मिलती। इसलिये राजन्! ऐसे अशुभ स्वप्नोंको देखनेपर भगवान् गणपतिकी प्रसन्नताके लिये विनायक-शान्ति करनी चाहिये।

शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन, बृहस्पतिवार और पुष्य-नक्षत्र होनेपर गणेशजीको सर्वौषधि और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे उपलित करे तथा उन भगवान् विघ्नेशके सामने स्वयं भद्रासनपर बैठकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर

भगवान् शङ्कर, पार्वती और गणेशकी पूजा करके सभी पितरों तथा ग्रहोंकी पूजा करे। चार कलश स्थापित कर उनमें सप्तमृत्तिका, गुग्गुल और गोरोचन आदि द्रव्य तथा सुगन्धित पदार्थ छोड़े। सिंहासनस्थ गणेशजीको स्नान कराना चाहिये। स्नान कराते समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा॥

(ब्राह्मपर्व २३। १९—२१)

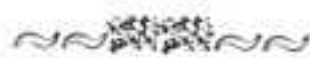
इन मन्त्रोंसे स्नान कराकर हवन आदि कार्य करे। अनन्तर हाथमें पुष्प, दूर्वा तथा सर्पप (सरसों) लेकर गणेशजीकी माता पार्वतीको तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। मन्त्र उच्चारण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे।
अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेव च॥

(ब्राह्मपर्व २३। २८)

अर्थात् 'हे भगवति! आप मुझे रूप, यश, तेज, पुत्र तथा धन दें, आप मेरी सभी कामनाओंको पूर्ण करें। मुझे अचल बुद्धि प्रदान करें और इस पृथ्वीपर प्रसिद्धि दें।'

प्रार्थनाके पश्चात् ब्राह्मणोंको तथा गुरुको भोजन कराकर उन्हें वस्त्र-युगल तथा दक्षिणा समर्पित करे। इस प्रकार भगवान् गणेश तथा ग्रहोंकी पूजा करनेसे सभी कर्मोंका फल प्राप्त होता है और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्य, कार्तिकेय और विनायकका पूजन एवं तिलक करनेसे सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। (अध्याय २३)



पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

राजा शतानीकने पूछा—विप्रेन्द्र! स्त्री और पुरुषके जो लक्षण कार्तिकेयने बनाये थे और जिस ग्रन्थको क्रोधमें आकर भगवान् शिवने समुद्रमें फेंक दिया था, वह कार्तिकेयको पुनः प्राप्त हुआ या नहीं? इसे आप मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजेन्द्र! कार्तिकेयने स्त्री-पुरुषका जैसा लक्षण कहा है, वैसा ही मैं कह रहा हूँ। व्योमकेश भगवान्के सुपुत्र कार्तिकेयने जब अपनी शक्तिके द्वारा क्रौंचपर्वतको विदीर्ण किया, उस समय ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कार्तिकेयसे कहा कि हम तुमपर प्रसन्न हैं, जो चाहो वह वर मुझसे माँग लो। उस तेजस्वी कुमार कार्तिकेयने नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि विभो! स्त्री-पुरुषके विषयमें मुझे अत्यधिक कौतूहल है। जो लक्षण-ग्रन्थ पहले मैंने बनाया था उसे तो पिता देवदेवेश्वरने क्रोधमें आकर समुद्रमें फेंक दिया। वह मुझे भूल भी गया है। अतः उसको सुननेकी मेरी इच्छा है। आप कृपा करके उसीका वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—तुमने अच्छी बात पूछी है। समुद्रने जिस प्रकारसे उन लक्षणोंको कहा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। समुद्रने स्त्री-पुरुषोंके उत्तम, मध्यम तथा अधम—तीन प्रकारके लक्षण बतलाये हैं।

शुभाशुभ लक्षण देखनेवालेको चाहिये कि वह शुभ मुहूर्तमें मध्याह्नके पूर्व पुरुषके लक्षणोंको देखे। प्रमाणसमूह, छायागति, सम्पूर्ण अङ्ग, दाँत, केश, नख, दाढ़ी-मूँछका लक्षण देखना चाहिये। पहले आयुकी परीक्षा करके ही लक्षण बताने चाहिये। आयु कम हो तो सभी लक्षण व्यर्थ हैं। अपनी अङ्गुलियोंसे जो पुरुष एक सौ आठ यानी चार

हाथ बारह अङ्गुलका होता है, वह उत्तम होता है। सौ अङ्गुलका होनेपर मध्यम और नब्बे अङ्गुलका होनेपर अधम माना जाता है—लम्बाईके प्रमाणका यही लक्षण आचार्य समुद्रने कहा है।

हे कुमार! अब मैं पुरुषके अङ्गोंका लक्षण कहता हूँ। जिसका पैर कोमल, मांसल, रक्तवर्ण, स्निग्ध, ऊँचा, पसीनेसे रहित और नाड़ियोंसे व्याप्त न हो अर्थात् नाड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती हों तो वह पुरुष राजा होता है। जिसके पैरके तलवेमें अंकुशका चिह्न हो, वह सदा सुखी रहता है। कछुवेके समान ऊँचे चरणवाला, कमलके सदृश कोमल और परस्पर मिली हुई अङ्गुलियोंवाला, सुन्दर पाष्णि—एड़ीसे युक्त, निगूढ़ टखनेवाला, सदा गर्म रहनेवाला, प्रस्वेदशून्य, रक्तवर्णके नखोंसे अलंकृत चरणवाला पुरुष राजा होता है। सूर्यके समान रूखा, सफेद नखोंसे युक्त, टेढ़ी-रूखी नाड़ियोंसे व्याप्त, विरल अङ्गुलियोंसे युक्त चरणवाले पुरुष दरिद्र और दुःखी होते हैं। जिसका चरण आगमें पकायी गयी मिट्टीके समान वर्णका होता है, वह ब्रह्महत्या करनेवाला, पीले चरणवाला अगम्या-गमन करनेवाला, कृष्णवर्णके चरणवाला मद्यपान करनेवाला तथा श्वेतवर्णके चरणवाला अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करनेवाला होता है। जिस पुरुषके पैरोंके अँगूठे मोटे होते हैं वे भाग्यहीन होते हैं। विकृत अँगूठेवाले सदा पैदल चलनेवाले और दुःखी होते हैं। चिपटे, विकृत तथा टूटे हुए अँगूठेवाले अतिशय निन्दित होते हैं एवं टेढ़े, छोटे और फटे हुए अँगूठेवाले कष्ट भोगते हैं। जिस पुरुषके पैरकी तर्जनी अँगुली अँगूठेसे बड़ी हो, उसको स्त्री-सुख प्राप्त होता है। कनिष्ठा अँगुलीके बड़ी होनेपर स्वर्णकी प्राप्ति होती है। चपटी, विरल, सूखी अँगुली होनेपर पुरुष धनहीन

होता है और सदा दुःख भोगता है। रुक्ष और श्वेत नख होनेपर दुःखकी प्राप्ति होती है। खराब नख होनेपर पुरुष शीलरहित और कामभोगरहित होता है। रोमसे युक्त जंघा होनेपर भाग्यहीन होता है। जंघे छोटे होनेपर ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किंतु बन्धनमें रहता है। मृगके समान जंघा होनेपर राजा होता है। लम्बी, मोटी तथा मांसल जंघावाला ऐश्वर्य प्राप्त करता है। सिंह तथा बाघके समान जंघावाला धनवान् होता है। जिसके घुटने मांसरहित होते हैं, वह विदेशमें मरता है, विकट जानु होनेपर दरिद्र होता है। नीचे घुटने होनेपर स्त्री-जित होता है और मांसल जानु होनेपर राजा होता है। हंस, भास पक्षी, शुक, वृष, सिंह, हाथी तथा अन्य श्रेष्ठ पशु-पक्षियोंके समान गति होनेपर व्यक्ति राजा अथवा भाग्यवान् होता है। ये आचार्य समुद्रके वचन हैं, इनमें संदेह नहीं है।

जिस पुरुषका रक्त कमलके समान होता है वह धनवान् होता है। कुछ लाल और कुछ काला रुधिरवाला मनुष्य अधम और पापकर्मको करनेवाला होता है। जिस पुरुषका रक्त मूँगेके समान रक्त और स्निग्ध होता है, वह सात द्वीपोंका राजा होता है। मृग अथवा मोरके समान पेट होनेपर उत्तम पुरुष होता है। बाघ, मेढक और सिंहके समान पेट होनेपर राजा होता है। मांससे पुष्ट, सीधा और गोल पार्श्ववाला व्यक्ति राजा होता है। बाघके समान पीठवाला व्यक्ति सेनापति होता है। सिंहके समान लम्बी पीठवाला व्यक्ति बन्धनमें पड़ता है। कछुवेके समान पीठवाला पुरुष धनवान् तथा सौभाग्य-सम्पन्न होता है। चौड़ा, मांससे पुष्ट और रोमयुक्त वक्षःस्थलवाला पुरुष, शतायु, धनवान् और उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। सूखी, रूखी, विरल हाथकी अँगुलियोंवाला पुरुष धनहीन और सदा दुःखी रहता है।

जिसके हाथमें मत्स्यरेखा होती है, उसका कार्य सिद्ध होता है और वह धनवान् तथा पुत्रवान् होता है। जिसके हाथमें तुला अथवा वेदीका चिह्न होता है, वह पुरुष व्यापारमें लाभ करता है। जिसके हाथमें सोमलताका चिह्न होता है, वह धनी होता है और यज्ञ करता है। जिसके हाथमें पर्वत और वृक्षका चिह्न होता है, उसकी लक्ष्मी स्थिर होती है और वह अनेक सेवकोंका स्वामी होता है। जिसके हाथमें बछ्छी, बाण, तोमर, खड्ग और धनुषका चिह्न होता है, वह युद्धमें विजयी होता है। जिसके हाथमें ध्वजा और शङ्खका चिह्न होता है, वह जहाजसे व्यापार करता है और धनवान् होता है। जिसके हाथमें श्रीवत्स, कमल, वज्र, रथ और कलशका चिह्न होता है, वह शत्रुरहित राजा होता है। दाहिने हाथके अँगूठेमें यवका चिह्न रहनेपर पुरुष सभी विद्याओंका ज्ञाता तथा प्रवक्ता होता है। जिस पुरुषके हाथमें कनिष्ठाके नीचेसे तर्जनीके मध्यतक रेखा चली जाती है और बीचमें अलग नहीं रहती है तो वह पुरुष सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जिसका पेट साँपके समान लम्बा होता है वह दरिद्री और अधिक भोजन करनेवाला होता है। विस्तीर्ण, फैली हुई, गम्भीर और गोल नाभिवाला व्यक्ति सुख भोगनेवाला और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नीची और छोटी नाभिवाला व्यक्ति विविध क्लेशोंको भोगनेवाला होता है। बलिके नीचे नाभि हो और वह विषम हो तो धनकी हानि होती है। दक्षिणावर्त नाभि बुद्धि प्रदान करती है और वामावर्त नाभि शान्ति प्रदान करती है। सौ दलोंवाले कमलकी कर्णिकाके समान नाभिवाला पुरुष राजा होता है। पेटमें एक बलि होनेपर शस्त्रसे मारा जाता है, दो बलि होनेपर स्त्री-भोगी होता है, तीन बलि होनेपर राजा अथवा आचार्य होता है। चार बलि होनेपर

अनेक पुत्र होते हैं, सीधी बलि होनेपर धनका उपभोग करता है।

जिनके स्कन्ध कठोर एवं मांसल तथा समान हों वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं। जिसका वक्षःस्थल बराबर, उन्नत, मांसल और विस्तृत होता है वह राजाके समान होता है। इसके विपरीत कड़े रोमवाले तथा नसों दिखायी पड़नेवाले वक्षःस्थल प्रायः निर्धनोंके ही होते हैं। दोनों वक्षःस्थल समान होनेपर पुरुष धनवान् होता है, पुष्ट होनेपर शूरवीर होता है, छोटे होनेपर धनहीन तथा छोटा-बड़ा होनेपर अकिंचन होता है और शस्त्रसे मारा जाता है। विषम हनुवाला धनहीन तथा उन्नत हनु (ठुड्डी)-वाला भोगी होता है। चिपटी ग्रीवावाला धनहीन होता है। महिषके समान ग्रीवावाला शूरवीर होता है। मृगके समान ग्रीवावाला डरपोक होता है। समान ग्रीवावाला राजा होता है। तोता, ऊँट, हाथी और बगुलेके समान लम्बी तथा शुष्क ग्रीवावाला धनहीन होता है। छोटी ग्रीवावाला धनवान् और सुखी होता है। पुष्ट, दुर्गन्धरहित, सम एवं थोड़े रोमोंसे युक्त काँखवाले धनी होते हैं, जिसकी भुजाएँ ऊपरको खिंची रहती हैं, वह बन्धनमें पड़ता है। छोटी भुजा रहनेपर दास होता है, छोटी-बड़ी भुजा होनेपर चोर होता है, लम्बी भुजा होनेपर सभी गुणोंसे युक्त होता है और जानुओंतक लम्बी भुजा होनेपर राजा होता है। जिसके हाथका तल गहरा होता है उसे पिताका धन नहीं प्राप्त होता, वह डरपोक होता है। ऊँचे करतलवाला पुरुष दानी, विषम करतलवाला पुरुष मिश्रित फलवाला, लाखके समान रक्तवर्णवाला करतल होनेपर राजा होता है। पीले करतलवाला पुरुष अगम्यागमन करनेवाला, काला और नीला करतलवाला मद्यादि द्रव्योंका पान करनेवाला होता है। रूखे करतलवाला पुरुष निर्धन होता है।

जिनके हाथकी रेखाएँ गहरी और स्निग्ध होती हैं वे धनवान् होते हैं। इसके विपरीत रेखावाले दरिद्र होते हैं। जिनकी अँगुलियाँ विरल होती हैं, उनके पास धन नहीं ठहरता और गहरी तथा छिद्रहीन अँगुली रहनेपर धनका संचयी रहता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—कार्तिकेय! चन्द्रमण्डलके समान मुखवाला व्यक्ति धर्मात्मा होता है और जिसका मुख सूँडकी आकृतिका होता है वह भाग्यहीन होता है। टेढ़ा, टूटा हुआ, विकृत और सिंहके समान मुखवाला चोर होता है। सुन्दर और कान्तियुक्त श्रेष्ठ हाथीके समान भरा हुआ सम्पूर्ण मुखवाला व्यक्ति राजा होता है। बकरे अथवा बंदरके समान मुखवाला व्यक्ति धनी होता है। जिसका मुख बड़ा होता है उसका दुर्भाग्य रहता है। छोटा मुखवाला कृपण, लम्बा मुखवाला धनहीन और पापी होता है। चौखूँटा मुखवाला धूर्त, स्त्रीके मुखके समान मुखवाला और निम्न मुखवाला पुरुष पुत्रहीन होता है या उसका पुत्र उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। जिसके कपोल कमलके दलके समान कोमल और कान्तिमान् होते हैं, वह धनवान् एवं कृषक होता है। सिंह, बाघ और हाथीके समान कपोलवाला व्यक्ति विविध भोग-सम्पत्तियोंवाला और सेनाका स्वामी होता है। जिसका नीचेका ओठ रक्तवर्णका होता है, वह राजा होता है और कमलके समान अधरवाला धनवान् होता है। मोटा और रूखा होंठ होनेपर दुःखी होता है।

जिसके कान मांसरहित हों वह संग्राममें मारा जाता है। चिपटा कान होनेपर रोगी, छोटा होनेपर कृपण, शङ्खुके समान कान होनेपर राजा, नाड़ियोंसे व्याप्त होनेपर क्रूर, केशोंसे युक्त होनेपर दीर्घजीवी, बड़ा, पुष्ट तथा लम्बा कान होनेपर भोगी तथा देवता और ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला एवं राजा होता है। जिसकी नाक शुककी चोंचके समान हो

वह सुख भोगनेवाला और शुष्क नाकवाला दीर्घजीवी होता है। पतली नाकवाला राजा, लम्बी नाकवाला भोगी, छोटी नाकवाला धर्मशील, हाथी, घोड़ा, सिंह या सुईकी भाँति तीखी नाकवाला व्यापारमें सफल होता है। कुन्द-पुष्पकी कलीके समान उज्ज्वल दाँतवाला राजा तथा हाथीके समान दाँतवाला एवं चिकने दाँतवाला गुणवान् होता है। भालू और बंदरके समान दाँतवाले नित्य भूखसे व्याकुल रहते हैं। कराल, रूखे, अलग-अलग और फूटे हुए दाँतवाले दुःखसे जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। बत्तीस दाँतवाले राजा, एकतीस दाँतवाले भोगी, तीस दाँतवाले सुख-दुःख भोगनेवाले तथा उनतीस दाँतवाले पुरुष दुःख ही भोगते हैं। काली या चित्रवर्णकी जीभ होनेपर व्यक्ति दासवृत्तिसे जीवन व्यतीत करता है। रूखी और मोटी जीभवाला क्रोधी, श्वेतवर्णकी जीभवाला पवित्र आचरणसे सम्पन्न होता है। निम्न, स्निग्ध, अग्रभाग रक्तवर्ण और छोटी जिह्वावाला विद्वान् होता है। कमलके पत्तेके समान पतली, लम्बी न बहुत मोटी और न बहुत चौड़ी जिह्वा रहनेपर राजा होता है। काले रंगका तालुवाला अपने कुलका नाशक, पीले तालुवाला सुख-दुःख भोग करनेवाला, सिंह और हाथीके तालुके समान तथा कमलके समान तालुवाला राजा होता है, श्वेत तालुवाला धनवान् होता है। रूखा, फटा हुआ तथा विकृत तालुवाला मनुष्य अच्छा नहीं माना जाता।

हंसके समान स्वरवाले तथा मेघके समान गम्भीर स्वरवाले पुरुष धन्य माने गये हैं। क्राँचके समान स्वरवाले राजा, महान् धनी तथा विविध सुखोंका भोग करनेवाले होते हैं। चक्रवाकके समान जिनका स्वर होता है ऐसे व्यक्ति धन्य तथा धर्मवत्सल राजा होते हैं। घड़े एवं दुन्दुभिके समान स्वरवाले पुरुष राजा होते हैं। रूखे, ऊँचे, क्रूर,

पशुओंके समान तथा घर्घरयुक्त स्वरवाले पुरुष दुःखभागी होते हैं। नीलकण्ठ पक्षीके समान स्वरवाले भाग्यवान् होते हैं। फूटे काँसेके बर्तनके समान तथा टूटे-फूटे स्वरवाले अधम कहे गये हैं।

दाडिमके पुष्पके समान नेत्रवाला राजा, व्याघ्रके समान नेत्रवाला क्रोधी, केकड़ेके समान आँखवाला झगड़ालू, बिल्ली और हंसके समान नेत्रवाला पुरुष अधम होता है। मयूर एवं नकुलके समान आँखवाले मध्यम माने जाते हैं। शहदके समान पिङ्गल वर्णके नेत्रवालेको लक्ष्मी कभी भी त्याग नहीं करती। गोरोचन, गुंजा और हरतालके समान पिङ्गल नेत्रवाला बलवान् और धनेश्वर होता है। अर्धचन्द्रके समान ललाट होनेपर राजा होता है। बड़ा ललाट होनेपर धनवान् होता है। छोटा ललाट होनेपर धर्मात्मा होता है। ललाटके बीच जिस स्त्री तथा पुरुषके पाँच आड़ी रेखा होती है वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है और ऐश्वर्य भी प्राप्त करता है। चार रेखा होनेपर अस्सी वर्ष, तीन रेखा होनेपर सत्तर वर्ष, दो रेखा होनेपर साठ वर्ष, एक रेखा होनेपर चालीस वर्ष और एक भी रेखा न होनेपर पच्चीस वर्षकी आयुवाला होता है। इन रेखाओंके द्वारा हीन, मध्यम और पूर्ण आयुकी परीक्षा करनी चाहिये। छोटी रेखा होनेपर व्याधियुक्त तथा अल्पायु और लम्बी-लम्बी रेखाएँ होनेपर दीर्घायु होता है। जिसके ललाटमें त्रिशूल अथवा पट्टिशका चिह्न होता है, वह बड़ा प्रतापी, कीर्तिसम्पन्न राजा होता है। छत्रके समान सिर होनेपर राजा, लम्बा सिर होनेपर दुःखी, दरिद्र, विषम होनेपर समान तथा गोल सिर होनेपर सुखी, हाथीके समान सिर होनेपर राजाके समान होता है। जिनके केश अथवा रोम मोटे, रूखे, कपिल और आगेसे फटे हुए होते हैं, वे अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं। बहुत गहरे और कठोर केश दुःखदायी होते

हैं। विरल, स्निग्ध, कोमल, भ्रमर अथवा अंजनके प्रकारके सुखका भोग करता है और राजा होता समान अतिशय कृष्ण केशवाला पुरुष अनेक है। (अध्याय २४—२६)

राजपुरुषोंके लक्षण

कार्तिकेयजीने कहा—ब्रह्मन्! आप राजाओंके शरीरके अङ्गोंके लक्षणोंको बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—मैं मनुष्योंमें राजाओंके अङ्गोंके लक्षणोंको संक्षेपमें बताता हूँ। यदि ये लक्षण साधारण पुरुषोंमें भी प्रकट हों तो वे भी राजाके समान होते हैं, इन्हें आप सुनें—

जिस पुरुषके नाभि, स्वर और संधिस्थान—ये तीन गम्भीर हों, मुख, ललाट और वक्षःस्थल—ये तीन विस्तीर्ण हों, वक्षःस्थल, कक्ष, नासिका, नख, मुख और कृकाटिका—ये छः उन्नत अर्थात् ऊँचे हों, उपस्थ, पीठ, ग्रीवा और जंघा—ये चार ह्रस्व हों, नेत्रोंके प्रान्त, हाथ, पैर, तालु, ओष्ठ, जिह्वा तथा नख—ये सात रक्तवर्णके हों, हनु, नेत्र, भुजा, नासिका तथा दोनों स्तनोंका अन्तर—ये पाँच दीर्घ हों और दन्त, केश, अङ्गुलियोंके पर्व, त्वचा तथा नख—ये पाँच सूक्ष्म हों, वह सप्तद्वीपवती पृथ्वीका राजा होता है। जिसके नेत्र कमलदलके समान और अन्तमें रक्तवर्णके होते हैं, वह लक्ष्मीका स्वामी होता है। शहदके समान पिङ्गल नेत्रवाला पुरुष महात्मा होता है। सूखी आँखवाला डरपोक, गोल और चक्रके समान घूमनेवाली आँखवाला चोर, केकड़ेके समान आँखवाला क्रूर होता है। नील कमलके समान नेत्र होनेपर विद्वान्, श्यामवर्णके नेत्र होनेपर सौभाग्यशाली, विशाल नेत्र होनेपर भाग्यवान्, स्थूल नेत्र होनेपर राजमन्त्री और दीन

नेत्र होनेपर दरिद्र होता है। भौंहें विशाल होनेपर सुखी, ऊँची होनेपर अल्पायु और विषम या बहुत लम्बी होनेपर दरिद्र और दोनों भौंहोंके मिले हुए होनेपर धनहीन होता है। मध्यभागमें नीचेकी ओर झुकी भौंहवाले परदाराभिगामी होते हैं। बालचन्द्रकलाके समान भौंहें होनेपर राजा होता है। ऊँचा और निर्मल ललाट होनेपर उत्तम पुरुष होता है, नीचा ललाट होनेपर स्तुति किया जानेवाला और धनसे युक्त होता है, कहीं ऊँचा और कहीं नीचा ललाट होनेपर दरिद्र तथा सीपके समान ललाट होनेपर आचार्य होता है। स्निग्ध, हास्ययुक्त और दीनतासे रहित मुख शुभ होता है, दैन्यभावयुक्त तथा आँसुओंसे युक्त आँखोंवाला एवं रूखे चेहरेवाला श्रेष्ठ नहीं है। उत्तम पुरुषका हास्य कम्पनरहित धीरे-धीरे होता है। अधम व्यक्ति बहुत शब्दके साथ हँसता है। हँसते समय आँखको मूँदनेवाला व्यक्ति पापी होता है। गोल सिरवाला पुरुष अनेक गौओंका स्वामी तथा चिपटा सिरवाला माता-पिताको मारनेवाला होता है। घण्टेकी आकृतिके समान सिरवाला सदा कहीं-न-कहीं यात्रा करता रहता है। निम्न सिरवाला अनेक अनर्थोंको करनेवाला होता है।

इस प्रकार पुरुषोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंको मैंने आपसे कहा। अब स्त्रियोंके लक्षण बतलाता हूँ। (अध्याय २७)

स्त्रियोंके शुभाशुभ लक्षण

ब्रह्माजी बोले—कार्तिकेय ! स्त्रियोंके जो लक्षण मैंने पहले नारदजीको बतलाये थे, उन्हीं शुभाशुभ लक्षणोंको बताता हूँ। आप सावधान होकर सुनें—शुभ मुहूर्तमें कन्याके हाथ, पैर, अँगुली, नख, हाथकी रेखा, जंघा, कटि, नाभि, ऊरु, पेट, पीठ, भुजा, कान, जिह्वा, ओठ, दाँत, कपोल, गला, नेत्र, नासिका, ललाट, सिर, केश, स्वर, वर्ण और भौरी—इन सबके लक्षण देखे।

जिसकी ग्रीवामें रेखा हो और नेत्रोंका प्रान्तभाग कुछ लाल हो, वह स्त्री जिस घरमें जाती है, उस घरकी प्रतिदिन वृद्धि होती है। जिसके ललाटमें त्रिशूलका चिह्न होता है, वह कई हजार दासियोंकी स्वामिनी होती है। जिस स्त्रीकी राजहंसके समान गति, मृगके समान नेत्र, मृगके समान ही शरीरका वर्ण, दाँत बराबर और श्वेत होते हैं, वह उत्तम स्त्री होती है। मेढकके समान कुक्षिवाली एक ही पुत्र उत्पन्न करती है और वह पुत्र राजा होता है। हंसके समान मृदु वचन बोलनेवाली, शहदके समान पिङ्गल वर्णवाली स्त्री धन-धान्यसे सम्पन्न होती है, उसे आठ पुत्र होते हैं। जिस स्त्रीके लम्बे कान, सुन्दर नाक और भौंह धनुषके समान टेढ़ी होती है, वह अतिशय सुखका भोग करती है। तन्वी, श्यामवर्णा, मधुरभाषिणी, शङ्खुके समान अतिशय स्वच्छ दाँतोंवाली, स्निग्ध अङ्गोंसे समन्वित स्त्री अतिशय ऐश्वर्यको प्राप्त करती है। विस्तीर्ण जंघाओंवाली, वेदीके समान मध्यभागवाली, विशाल नेत्रोंवाली स्त्री रानी होती है। जिस स्त्रीके वाम स्तनपर, हाथमें, कानमें ऊपर या गलेपर तिल अथवा मसा होता है, उस स्त्रीको प्रथम पुत्र उत्पन्न होता है। जिस स्त्रीका पैर रक्तवर्ण हो, ठेहुने बहुत ऊँचे न हों, छोटी एड़ी हो, परस्पर मिली हुई सुन्दर अँगुलियाँ हों, लाल नेत्र हों—

ऐसी स्त्री अत्यन्त सुख भोग करती है। जिसके पैर बड़े-बड़े हों, सभी अङ्गोंमें रोम हों, छोटे और मोटे हाथ हों, वह दासी होती है। जिस स्त्रीके पैर उत्कट हों, मुख विकृत हो, ऊपरके ओठके ऊपर रोम हो वह शीघ्र अपने पतिको मार देती है। जो स्त्री पवित्र, पतिव्रता, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी भक्त होती है, वह मानुषी कहलाती है। नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्धित द्रव्य लगानेवाली, मधुर वचन बोलनेवाली, थोड़ा खानेवाली, कम सोनेवाली और सदा पवित्र रहनेवाली स्त्री देवता होती है। गुप्तरूपसे पाप करनेवाली, अपने पापको छिपानेवाली, अपने हृदयके अभिप्रायको किसीके आगे प्रकट न करनेवाली स्त्री मार्जारी-संज्ञक होती है। कभी हँसनेवाली, कभी क्रीडा करनेवाली, कभी क्रोध करनेवाली, कभी प्रसन्न रहनेवाली तथा पुरुषोंके मध्य रहनेवाली स्त्री गर्दभी-श्रेणीकी होती है। पति और बान्धवोंके द्वारा कहे गये हितकारी वचनको न माननेवाली, अपनी इच्छाके अनुसार विहार करनेवाली स्त्री आसुरी कही जाती है। बहुत खानेवाली, बहुत बोलनेवाली, खोटे वचन बोलनेवाली, पतिको मारनेवाली स्त्री राक्षसी-संज्ञक होती है। शौच, आचार और रूपसे रहित, सदा मलिन रहनेवाली, अतिशय भयंकर स्त्री पिशाची कहलाती है। अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, चपल नेत्रोंवाली, इधर-उधर देखनेवाली, लोभी नारी वानरी-संज्ञक होती है। चन्द्रमुखी, मदमत्त हाथीके समान चलनेवाली, रक्तवर्णके नखोंवाली, शुभ लक्षणोंसे युक्त हाथ-पैरवाली स्त्री विद्याधरी-श्रेणीकी होती है। वीणा, मृदङ्ग, वंशी आदि वाद्योंके शब्दोंको सुनने तथा पुष्पों और विविध सुगन्धित द्रव्योंमें अभिरुचि रखनेवाली स्त्री गान्धर्वी-श्रेणीकी होती है।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! ब्रह्माजी इस प्रकार बतलाकर अपने लोकको चले गये।
 स्त्री और पुरुषोंके लक्षणोंको स्वामिकार्तिकेयको (अध्याय २८)

विनायक-पूजाका माहात्म्य

शतानीकने कहा—मुने! अब आप मुझे भगवान् गणेशकी आराधनाके विषयमें बतलायें।
 सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! भगवान् गणेशकी आराधनामें किसी तिथि, नक्षत्र या उपवासादिकी अपेक्षा नहीं होती। जिस किसी भी दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् गणेशकी पूजा की जाय तो वह अभीष्ट फलोंको देनेवाली होती है। कामना-भेदसे अलग-अलग वस्तुओंसे गणपतिकी मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। 'महाकर्णाय^१ विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।'—यह गणेश-गायत्री है। इसका जप करना चाहिये।
 शुक्ल पक्षकी चतुर्थीको उपवास कर जो भगवान् गणेशका पूजन करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं और सभी अनिष्ट दूर हो जाते हैं। श्रीगणेशजीके अनुकूल होनेसे सभी जगत् अनुकूल हो जाता है। जिसपर एकदन्त भगवान् गणपति संतुष्ट होते हैं, उसपर देवता, पितर, मनुष्य आदि सभी प्रसन्न रहते हैं^२। इसलिये सम्पूर्ण विघ्नोंको निवृत्त करनेके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी आराधना करनी चाहिये। (अध्याय २९-३०)

चतुर्थी-कल्पमें शिवा, शान्ता तथा सुखा—तीन प्रकारकी

चतुर्थीका फल और उनका व्रत-विधान

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! चतुर्थी तिथि तीन प्रकारकी होती है—शिवा, शान्ता और सुखा। अब मैं इनका लक्षण कहता हूँ, उसे सुनें—
 भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम 'शिवा' है, इस दिन जो स्नान, दान, उपवास, जप आदि सत्कर्म किया जाता है, वह गणपतिके प्रसादसे सौ गुना हो जाता है। इस चतुर्थीको गुड़, लवण और घृतका दान करना चाहिये, यह शुभकर माना गया है और गुड़के अपूपों (मालपूआ)-से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये। इस दिन जो स्त्री अपने सास और ससुरको गुड़के पूए तथा नमकीन पूए खिलाती है वह गणपतिके अनुग्रहसे सौभाग्यवती होती है। पतिकी कामना करनेवाली कन्या विशेषरूपसे इस चतुर्थीका व्रत करे और गणेशजीकी पूजा करे। राजन्! यह शिवा-चतुर्थीका विधान है।
 माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीको 'शान्ता' कहते हैं। यह शान्ता तिथि नित्य शान्ति प्रदान करनेके कारण 'शान्ता' कही गयी है। इस दिन किये हुए स्नान-दानादि सत्कर्म गणेशजीकी कृपासे हजार गुना फलदायक हो जाते हैं। इस शान्ता नामक चतुर्थी तिथिको उपवास कर गणेशजीका पूजन तथा हवन करे और लवण, गुड़, शाक एवं गुड़के पूए ब्राह्मणोंको दानमें दे। विशेषरूपसे स्त्रियाँ

१-परम्परासे प्रचलित गणेश-गायत्रीमें 'एकदन्ताय' पाठ है।

२-एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिमागते। पितृदेवमनुष्याद्याः सर्वे तुष्यन्ति भारत ॥ (ब्राह्मपर्व ३०।८)

अपने ससुर आदि पूज्य जनोंका पूजन करें एवं उन्हें भोजन करायें। इस व्रतके करनेसे अखण्ड सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त विघ्न दूर होते हैं और गणेशजीकी कृपा प्राप्त होती है।

किसी भी महीनेके भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको 'सुखा' कहते हैं। यह व्रत स्त्रियोंको सौभाग्य, उत्तम रूप और सुख देनेवाला है। भगवान् शङ्कर एवं माता पार्वतीके संयुक्त तेजसे भूमिद्वारा रक्तवर्णके मङ्गलकी उत्पत्ति हुई। भूमिका पुत्र होनेसे वह भौम कहलाया और कुज, रक्त, वीर, अङ्गारक आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुआ। वह शरीरके अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला तथा सौभाग्य आदि देनेवाला है, इसीलिये अङ्गारक कहलाया। जो पुरुष अथवा स्त्री भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको उपवास करके भक्तिपूर्वक प्रथम गणेशजीका, तदनन्तर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प आदिसे भौमका पूजन करते हैं, उन्हें सौभाग्य और उत्तम रूप-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है।

प्रथम संकल्पकर स्नान करे, अनन्तर गणेश-स्मरणपूर्वक हाथमें शुद्ध मृत्तिका लेकर इस मन्त्रको पढ़े—

इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णो नोद्धरता किल।

तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसंचितम्॥

(ब्राह्मपर्व ३१। २४)

इसके बाद मृत्तिकाको गङ्गाजलसे मिश्रितकर सूर्यके सामने करे, तदनन्तर अपने सिर आदि अङ्गोंमें लगाये और फिर जलके मध्य खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्यौकसाम्।

स्वेदाण्डजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः॥

(ब्राह्मपर्व ३१। २७)

अनन्तर सभी तीर्थों, नदियों, सरोवरों, झरनों और तालाबोंमें मैंने स्नान किया—इस प्रकार भावना करता हुआ गोते लगाकर स्नान करे, फिर

पवित्र होकर घरमें आकर दूर्वा, पीपल, शमी तथा गौका स्पर्श करे। इनके स्पर्श करनेके मन्त्र इस प्रकार हैं—

दूर्वा स्पर्श करनेका मन्त्र

त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता॥

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया कृतम्।

(ब्राह्मपर्व ३१। ३१-३२)

शमी स्पर्श करनेका मन्त्र

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ।

शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान्॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३३)

पीपल-वृक्ष स्पर्श करनेका मन्त्र

नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम्।

शक्तानां च समुद्योगमश्नत्य त्वं क्षमस्व मे॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३४)

गौको स्पर्श करनेका मन्त्र

सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता।

तस्मात् स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३६)

श्रद्धापूर्वक पहले गौकी प्रदक्षिणा कर उपर्युक्त मन्त्रको पढ़े और गौका स्पर्श करे। जो गौकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार इनको स्पर्शकर, हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। अनन्तर खदिर (खैर)-की समिधाओंसे अग्नि प्रज्वलित कर घृत, दुग्ध, यव, तिल तथा विविध भक्ष्य पदार्थोंसे मन्त्र पढ़ते हुए हवन करे। आहुति इन मन्त्रोंसे दे—ॐ शर्वाय स्वाहा, ॐ शर्वपुत्राय स्वाहा, ॐ क्षोण्युत्सङ्गभवाय स्वाहा, ॐ कुजाय स्वाहा, ॐ ललिताङ्गाय स्वाहा तथा ॐ लोहिताङ्गाय स्वाहा। इन प्रत्येक मन्त्रोंसे १०८ या अपनी शक्तिके अनुसार आहुति दे। अनन्तर सुवर्ण, चाँदी, चन्दन या देवदारुके

काष्ठकी मङ्गलकी मूर्ति बनाकर ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें उसे स्थापित करे। घी, कुंकुम, रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे। अथवा ताम्र, मृत्तिका या बाँससे बने पात्रमें कुंकुम, केसर आदिसे मूर्ति अङ्कितकर पूजा करे। 'अग्निर्मूर्धा०*' इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे सभी उपचारोंको समर्पित कर वह मूर्ति ब्राह्मणको दे दे और यथाशक्ति घी, दूध, चावल, गेहूँ, गुड़ आदि वस्तु भी ब्राह्मणको दे। धन रहनेपर कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि कंजूसी करनेसे फल नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार चार बार भौमयुक्त चतुर्थीका व्रत कर श्रद्धापूर्वक दस अथवा पाँच तोले सोनेकी

मङ्गल और गणपतिकी मूर्ति बनवाये। उसे बीस पल या दस पलके सोने, चाँदी अथवा ताम्र आदिके पात्रमें भक्तिपूर्वक स्थापित करे। सभी उपचारोंसे पूजा करनेके बाद दक्षिणाके साथ सत्पात्र ब्राह्मणको उसे दे, इससे इस व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। राजन्! इस प्रकार इस उत्तम तिथिको मैंने कहा। इस दिन जो व्रत करता है, वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी एवं प्रभावान् तथा वायुके समान बलवान् होता है और अन्तमें महागणपतिके अनुग्रहसे भौमलोकमें निवास करता है। इस तिथिके माहात्म्यको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक पढ़ता-सुनता है, वह महापातकादिसे मुक्त होकर श्रेष्ठ सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ३१)



पञ्चमी-कल्पका आरम्भ, नागपञ्चमीकी कथा, पञ्चमी-व्रतका विधान और फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं पञ्चमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। पञ्चमी तिथि नागोंको अत्यन्त प्रिय है और उन्हें आनन्द देनेवाली है। इस दिन नागलोकमें विशिष्ट उत्सव होता है। पञ्चमी तिथिको जो व्यक्ति नागोंको दूधसे स्नान कराता है, उसके कुलमें वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनञ्जय—ये सभी बड़े-बड़े नाग अभय दान देते हैं—उसके कुलमें सर्पका भय नहीं रहता। एक बार माताके शापसे नागलोक जलने लग गये थे। इसीलिये उस दाहकी व्यथाको दूर करनेके लिये पञ्चमीको गायके दूधसे नागोंको आज भी लोग स्नान कराते हैं, इससे सर्प-भय नहीं रहता।

राजाने पूछा—महाराज! नागमाताने नागोंको क्यों शाप दिया था और फिर वे कैसे बच गये? इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—एक बार राक्षसों और देवताओंने मिलकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे अतिशय श्वेत उच्चैःश्रवा नामका एक अश्व निकला, उसे देखकर नागमाता कद्रूने अपनी सपत्नी (सौत) विनतासे कहा कि देखो, यह अश्व श्वेतवर्णका है, परंतु इसके बाल काले दीख पड़ते हैं। तब विनताने कहा कि न तो यह अश्व सर्वश्वेत है, न काला है और न लाल। यह सुनकर कद्रूने कहा—'मेरे साथ शर्त करो कि यदि मैं इस अश्वके बालोंको कृष्णवर्णका दिखा दूँ तो तुम मेरी दासी हो जाओगी और यदि नहीं दिखा सकी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी।' विनताने यह शर्त स्वीकार कर ली। दोनों क्रोध करती हुई अपने-अपने स्थानको चली गयीं। कद्रूने अपने पुत्र नागोंको बुलाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुना दिया और कहा कि 'पुत्रो! तुम अश्वके बालके समान सूक्ष्म होकर उच्चैःश्रवाके

* अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाश्रेताश्सि जिन्वति ॥ (यजुर्वेद ३।१२)

शरीरमें लिपट जाओ, जिससे यह कृष्णवर्णका दिखायी देने लगे। ताकि मैं अपनी सौत विनताको जीतकर उसे अपनी दासी बना सकूँ।' माताके इस वचनको सुनकर नागोंने कहा — 'माँ! यह छल तो हमलोग नहीं करेंगे, चाहे तुम्हारी जीत हो या हार। छलसे जीतना बहुत बड़ा अधर्म है।' पुत्रोंका यह वचन सुनकर कद्रूने क्रुद्ध होकर कहा—तुमलोग मेरी आज्ञा नहीं मानते हो, इसलिये मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि 'पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न राजा जनमेजय जब सर्प-सत्र करेंगे, तब उस यज्ञमें तुम सभी अग्निमें जल जाओगे।' इतना कहकर कद्रू चुप हो गयी। नागगण माताका शाप सुनकर बहुत घबड़ाये और वासुकिको साथमें लेकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे तथा ब्रह्माजीको अपना सारा वृत्तान्त सुनाया। इसपर ब्रह्माजीने कहा कि वासुके! चिन्ता मत करो। मेरी बात सुनो—यायावर-वंशमें बहुत बड़ा तपस्वी जरत्कारु नामका ब्राह्मण उत्पन्न होगा। उसके साथ तुम अपनी जरत्कारु नामवाली बहिनका विवाह कर देना और वह जो भी कहे, उसका वचन स्वीकार करना। उसे आस्तीक नामका विख्यात पुत्र उत्पन्न होगा, वह जनमेजयके सर्पयज्ञको रोकेंगा और तुमलोगोंकी रक्षा करेगा। ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर नागराज वासुकि आदि अतिशय प्रसन्न हो, उन्हें प्रणाम कर अपने लोकमें आ गये।

सुमन्तु मुनिने इस कथाको सुनाकर कहा—राजन्! यह यज्ञ तुम्हारे पिता राजा जनमेजयने किया था। यही बात श्रीकृष्णभगवान्ने भी युधिष्ठिरसे कही थी कि 'राजन्! आजसे सौ वर्षके बाद सर्पयज्ञ होगा, जिसमें बड़े-बड़े विषधर और दुष्ट नाग नष्ट हो जायँगे। करोड़ों नाग जब अग्निमें दग्ध होने लगेंगे, तब आस्तीक नामक ब्राह्मण सर्पयज्ञ

रोककर नागोंकी रक्षा करेगा।' ब्रह्माजीने पञ्चमीके दिन वर दिया था और आस्तीक मुनिने पञ्चमीको ही नागोंकी रक्षा की थी, अतः पञ्चमी तिथि नागोंको बहुत प्रिय है*।

पञ्चमीके दिन नागोंकी पूजा कर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो नाग पृथ्वीमें, आकाशमें, स्वर्गमें, सूर्यकी किरणोंमें, सरोवरोंमें, वापी, कूप, तालाब आदिमें रहते हैं, वे सब हमपर प्रसन्न हों, हम उनको बार-बार नमस्कार करते हैं—

सर्वे नागाः प्रीयन्तां मे ये केचित् पृथिवीतले ॥
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः ।
ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ।
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥

(ब्राह्मपर्व ३२। ३३-३४)

इस प्रकार नागोंको विसर्जित कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और स्वयं अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करना चाहिये। प्रथम मीठा भोजन करना चाहिये, अनन्तर अपनी अभिरुचिके अनुसार भोजन करे।

इस प्रकार नियमानुसार जो पञ्चमीको नागोंका पूजन करता है, वह श्रेष्ठ विमानमें बैठकर नागलोकको जाता है और बादमें द्वापरयुगमें बहुत पराक्रमी, रोगरहित तथा प्रतापी राजा होता है। इसलिये घी, खीर तथा गुग्गुलुसे इन नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजाने पूछा—महाराज! क्रुद्ध सर्पके काटनेसे मरनेवाला व्यक्ति किस गतिको प्राप्त होता है और जिसके माता-पिता, भाई, पुत्र आदि सर्पके काटनेसे मरे हों, उनके उद्धारके लिये कौन-सा व्रत, दान अथवा उपवास करना चाहिये, यह आप बतायें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! सर्पके काटनेसे जो मरता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है तथा

* पञ्चम्यां तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान्।

तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दयिता सदा। नागानामानन्दकरो दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ॥ (ब्राह्मपर्व ३२। ३२)

निर्विष सर्प होता है और जिसके माता-पिता आदि सर्पके काटनेसे मरते हैं, वह उनकी सद्गतिके लिये भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको उपवास कर नागोंकी पूजा करे^१। यह तिथि महापुण्या कही गयी है। इस प्रकार बारह महीनेतक चतुर्थी तिथिके दिन एक बार भोजन करना चाहिये और पञ्चमीको व्रत कर नागोंकी पूजा करनी चाहिये। पृथ्वीपर नागोंका चित्र अङ्कित कर अथवा सोना, काष्ठ या मिट्टीका नाग बनाकर पञ्चमीके दिन करवीर, कमल, चमेली आदि पुष्प, गन्ध, धूप और विविध नैवेद्योंसे उनकी पूजा कर घी, खीर, और लड्डू उत्तम पाँच ब्राह्मणोंको खिलाये। अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल—इन बारह नागोंकी बारह महीनोंमें क्रमशः पूजा करे।

इस प्रकार वर्षपर्यन्त व्रत एवं पूजनकर व्रतकी

पारणा करनी चाहिये। बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणको सोनेका नाग बनाकर उसे देना चाहिये। यह उद्यापनकी विधि है। राजन्! आपके पिता जनमेजयने भी अपने पिता परीक्षितके उद्धारके लिये यह व्रत किया था और सोनेका बहुत भारी नाग तथा अनेक गौएँ ब्राह्मणोंको दी थीं। ऐसा करनेपर वे पितृ-ऋणसे मुक्त हुए थे और परीक्षितने भी उत्तम लोकको प्राप्त किया था। आप भी इसी प्रकार सोनेका नाग बनाकर उनकी पूजा कर उन्हें ब्राह्मणको दान करें, इससे आप भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जायँगे। राजन्! जो कोई भी इस नागपञ्चमी-व्रतको करेगा, साँपसे डँसे जानेपर भी वह शुभलोकको प्राप्त होगा और जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनेगा, उसके कुलमें कभी भी साँपका भय नहीं होगा। इस पञ्चमी-व्रतके करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय ३२)



सर्पोंके लक्षण, स्वरूप और जाति?

राजा शतानीकने पूछा—मुने! सर्पोंके कितने रूप हैं, क्या लक्षण हैं, कितने रंग हैं और उनकी कितनी जातियाँ हैं? इसका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस विषयमें सुमेरु पर्वतपर महर्षि कश्यप और गौतमका जो संवाद हुआ था, उसका मैं वर्णन करता हूँ। महर्षि कश्यप किसी समय अपने आश्रममें बैठे थे। उस समय वहाँ उपस्थित महर्षि गौतमने उन्हें प्रणामकर विनयपूर्वक पूछा—महाराज! सर्पोंके लक्षण, जाति, वर्ण और स्वभाव किस प्रकारके हैं, उनका आप वर्णन करें तथा उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई

है यह भी बतायें। वे विष किस प्रकार छोड़ते हैं, विषके कितने वेग हैं, विषकी कितनी नाड़ियाँ हैं, साँपोंके दाँत कितने प्रकारके होते हैं, सर्पिणीको गर्भ कब होता है और वह कितने दिनोंमें प्रसव करती है, स्त्री-पुरुष और नपुंसक सर्पका क्या लक्षण है, ये क्यों काटते हैं, इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतायें।

कश्यपजी बोले—मुने! आप ध्यान देकर सुनें। मैं सर्पोंके सभी भेदोंका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सर्पोंको मद होता है। उस समय वे मैथुन करते हैं। वर्षा-ऋतुके चार महीनेतक

१-वर्तमानमें नागपञ्चमी प्रायः सभी पञ्चाङ्गों तथा व्रतके निबन्ध-ग्रन्थोंके अनुसार श्रावण शुक्ल पञ्चमीको होती है। यहाँ या तो पाठ अशुद्ध है या कालान्तरमें कभी भाद्रपदमें नागपञ्चमी मनायी जाती रही होगी।

२-शिवतत्त्व-रत्नाकर और अभिलाषितार्थ-चिन्तामणि तथा आयुर्वेद-ग्रन्थों—सुश्रुत, चरक, वाग्भट्टके चिकित्साख्यानोंमें भी इस विषयका वर्णन मिलता है।

सर्पिणी गर्भ धारण करती है, कार्तिकमें दो सौ चालीस अंडे देती है और उनमेंसे कुछको स्वयं प्रतिदिन खाने लगती है। प्रकृतिकी कृपासे कुछेक अंडे इधर-उधर ढुलककर बच जाते हैं। सोनेकी तरह चमकनेवाले अंडोंमें पुरुष, स्वर्णकेतक वर्णके समान आभावाले और लम्बी रेखाओंसे युक्त अंडोंसे स्त्री तथा शिरीषपुष्पके समान रंगवाले अंडोंके बीच नपुंसक सर्प होता है। उन अंडोंको सर्पिणी छः महीनेतक सेती है। अनन्तर अंडोंके फूटनेपर उनसे सर्प निकलते हैं और वे बच्चे अपनी मातासे स्नेह करते हैं। अंडेके बाहर निकलनेके सात दिनमें बच्चोंका कृष्णवर्ण हो जाता है। सर्पकी आयु एक सौ बीस वर्षकी होती है और इनकी मृत्यु आठ प्रकारसे होती है—मोरसे, मनुष्यसे, चकोर पक्षीसे, बिल्लीसे, नकुलसे, शूकरसे, वृश्चिकसे और गौ, भैंस, घोड़े, ऊँट आदि पशुओंके खुरोंसे दब जानेपर। इनसे बचनेपर सर्प एक सौ बीस वर्षतक जीवित रहते हैं। सात दिनके बाद दाँत उगते हैं और इक्कीस दिनमें विष हो जाता है। साँप काटनेके तुरंत बाद अपने जबड़ेसे तीक्ष्ण विषका त्याग करता है और फिर विष इकट्ठा हो जाता है। सर्पिणीके साथ घूमनेवाला सर्प बालसर्प कहा जाता है। पचीस दिनमें वह बच्चा भी विषके द्वारा दूसरे प्राणियोंके प्राण हरनेमें समर्थ हो जाता है। छः महीनेमें कंचुक- (केंचुल-) का त्याग करता है। साँपके दो सौ चालीस पैर होते हैं, परंतु वे पैर गायके रोयेंके समान बहुत सूक्ष्म होते हैं, इसीलिये दिखायी नहीं देते। चलनेके समय निकल आते हैं और अन्य समय भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। उनके शरीरमें दो सौ बीस अङ्गुलियाँ और दो सौ बीस संधियाँ होती हैं। अपने समयके बिना जो सर्प उत्पन्न होते हैं उनमें कम विष रहता है और वे पचहत्तर वर्षसे अधिक जीते भी नहीं हैं। जिस साँपके दाँत लाल,

पीले एवं सफेद हों और विषका वेग भी मंद हो, वे अल्पायु और बहुत डरपोक होते हैं।

साँपको एक मुँह, दो जीभ, बत्तीस दाँत और विषसे भरी हुई चार दाढ़ें होती हैं। उन दाढ़ोंके नाम मकरी, कराली, कालरात्री और यमदूती है। इनके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और यम—ये चार देवता हैं। यमदूती नामकी दाढ़ सबसे छोटी होती है। इससे साँप जिसे काटता है वह तत्क्षण मर जाता है। इसपर मन्त्र, तन्त्र, ओषधि आदिका कुछ भी असर नहीं होता। मकरी दाढ़का चिह्न शस्त्रके समान, करालीका काकके पैरके समान तथा कालरात्रीका हाथके समान चिह्न होता है और यमदूती कूर्मके समान होती है। ये क्रमशः एक, दो, तीन और चार महीनोंमें उत्पन्न होती हैं और क्रमशः वात, पित्त, कफ और संनिपात इनमें होता है। क्रमशः गुड़युक्त भात, कषाययुक्त अन्न, कटु पदार्थ, संनिपातमें दिया जानेवाला पथ्य इनके द्वारा काटे गये व्यक्तिको देना चाहिये। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इन चार दाढ़ोंके क्रमशः रंग हैं। इनके वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। सर्पोंके दाढ़ोंमें सदा विष नहीं रहता। दाहिने नेत्रके समीप विष रहनेका स्थान है। क्रोध करनेपर वह विष पहले मस्तकमें जाता है, मस्तकसे धमनी और फिर नाड़ियोंके द्वारा दाढ़में पहुँच जाता है।

आठ कारणोंसे साँप काटता है—दबनेसे, पहलेके वैरसे, भयसे, मदसे, भूखसे, विषका वेग होनेसे, संतानकी रक्षाके लिये तथा कालकी प्रेरणासे। जब सर्प काटते ही पेटकी ओर उलट जाता है और उसकी दाढ़ टेढ़ी हो जाती है, तब उसे दबा हुआ समझना चाहिये। जिसके काटनेसे बहुत बड़ा घाव हो जाय, उसको अत्यन्त द्वेषसे काटा है, ऐसा समझना चाहिये। एक दाढ़का चिह्न हो जाय, किंतु वह भी भलीभाँति दिखायी न पड़े तो भयसे काटा हुआ

समझना चाहिये। इसी प्रकार रेखाकी तरह दाढ़ दिखायी दे तो मदसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और बड़ा घाव भर जाय तो भूखसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और घावमें रक्त हो जाय तो विषके वेगसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे, किंतु घाव न रहे तो संतानकी रक्षाके लिये काटा हुआ मानना चाहिये। काकके पैरकी तरह तीन दाढ़ गहरे दिखायी दें या चार दाढ़ दिखायी दें तो कालकी प्रेरणासे काटा हुआ जानना चाहिये। यह

असाध्य है, इसकी कोई भी चिकित्सा नहीं है*।

सर्पके काटनेके दंष्ट्र, दंष्ट्रानुपीत और दंष्ट्रोद्धत—ये तीन भेद हैं। सर्पके काटनेके बाद ग्रीवा यदि झुके तो दंष्ट्र तथा काटकर पार करे तो दंष्ट्रानुपीत कहते हैं। इसमें तिहाई विष चढ़ता है और काटकर सब विष उगल दे तथा स्वयं निर्विष होकर उलट जाय—पीठके बल उलटा हो जाय, उसका पेट दिखायी दे तो उसे दंष्ट्रोद्धत कहते हैं।

(अध्याय ३३)



विभिन्न तिथियों एवं नक्षत्रोंमें कालसर्पसे डँसे हुए पुरुषके लक्षण, नागोंकी उत्पत्तिकी कथा

कश्यप मुनि बोले—गौतम! अब मैं कालसर्पसे काटे हुए पुरुषका लक्षण कहता हूँ, जिस पुरुषको कालसर्प काटता है, उसकी जिह्वा भंग हो जाती है, हृदयमें दर्द होता है, नेत्रोंसे दिखायी नहीं देता, दाँत और शरीर पके हुए जामुनके फलके समान काले पड़ जाते हैं, अङ्गोंमें शिथिलता आ जाती है, विष्टाका परित्याग होने लगता है, कंधे, कमर और ग्रीवा झुक जाते हैं, मुख नीचेकी ओर लटक जाता है, आँखें चढ़ जाती हैं, शरीरमें दाह और कम्प होने लगता है, बार-बार आँखें बंद हो जाती हैं, शस्त्रसे शरीरमें काटनेपर खून नहीं निकलता। बेतसे मारनेपर भी शरीरमें रेखा नहीं पड़ती, काटनेका स्थान कटे हुए जामुनके समान नीले रंगका, फूला हुआ, रक्तसे परिपूर्ण और कौएके पैरके समान हो जाता है, हिचकी आने लगती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, श्वासकी गति बढ़ जाती है, शरीरका रंग पीला पड़ जाता

है। ऐसी अवस्थाको कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। उसकी मृत्यु आसन्न समझनी चाहिये।

घाव फूल जाय, नीले रंगका हो जाय, अधिक पसीना आने लगे, नाकसे बोलने लगे, ओठ लटक जाय, हृदयमें कम्पन होने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। दाँत पीसने लगे, नेत्र उलट जायँ, लम्बी श्वास आने लगे, ग्रीवा लटक जाय, नाभि फड़कने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ जानना चाहिये। दर्पण या जलमें अपनी छाया न दीखे, सूर्य तेजहीन दिखायी पड़े, नेत्र लाल हो जायँ, सम्पूर्ण शरीर कष्टके कारण काँपने लगे तो उसे कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये, उसकी शीघ्र ही मृत्यु सम्भाव्य है।

अष्टमी, नवमी, कृष्णा चतुर्दशी और नागपञ्चमीके दिन जिसको साँप काटता है, उसके प्रायः प्राण नहीं बचते। आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और

* सभी सर्पोंकी दवाके रूपमें मन्त्र-शास्त्रोंमें विशेषकर गारुडोपनिषद्में गरुड-मन्त्र और सर्पोंकी मणियाँ उनके विषकी अचूक ओषधियाँ हैं। कुछ अन्य ओषधियाँ भी अचूक होती हैं जो सर्पोंको निर्विष एवं स्तम्भित बना देती हैं। डुंडुभ सर्पके काट लेनेपर किसी भी अन्य सर्पका विष नहीं चढ़ता। नर्मदा नदीका नाम लेनेसे भी साँप भागते हैं—

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि। नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥ (विष्णुपु० ४। ३। १३)

शतभिषा नक्षत्रमें जिसको साँप काटता है वह भी नहीं जीता। इन नक्षत्रोंमें विष पीनेवाला व्यक्ति भी तत्काल मर जाता है। पूर्वोक्त तिथि और नक्षत्र दोनों मिल जायँ तथा खण्डहरमें, श्मशानमें और सूखे वृक्षके नीचे जिसे साँप काटता है वह नहीं जीता।

मनुष्यके शरीरमें एक सौ आठ मर्म-स्थान हैं, उनमें भी शंख अर्थात् ललाटकी हड्डी, आँख, भ्रूमध्य, वस्ति, अण्डकोशका ऊपरी भाग, कक्ष, कंधे, हृदय, वक्षःस्थल, तालु, ठोढ़ी और गुदा—ये बारह मुख्य मर्म-स्थान हैं। इनमें सर्प काटनेसे अथवा शस्त्राघात होनेपर मनुष्य जीवित नहीं रहता।

अब सर्प काटनेके बाद जो वैद्यको बुलाने जाता है उस दूतका लक्षण कहता हूँ। उत्तम जातिका हीन वर्ण दूत और हीन जातिका उत्तम वर्ण दूत भी अच्छा नहीं होता। वह दूत हाथमें दंड लिये हुए हों, दो दूत हों, कृष्ण अथवा रक्तवस्त्र पहने हों, मुख ढके हों, सिरपर एक

वस्त्र लपेटे हो, शरीरमें तेल लगाये हो, केश खोले हो, जोरसे बोलता हुआ आये, हाथ-पैर पीटे तो ऐसा दूत अत्यन्त अशुभ है। जिस रोगीका दूत इन लक्षणोंसे युक्त वैद्यके समीप जाता है, वह रोगी अवश्य ही मर जाता है।

कश्यपजी बोले—गौतम! अब मैं भगवान् शिवके द्वारा कथित नागोंकी उत्पत्तिके विषयमें कहता हूँ। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने अनेक नागों एवं ग्रहोंकी सृष्टि की। अनन्त नाग सूर्य, वासुकि चन्द्रमा, तक्षक भौम, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंखपाल शनैश्चर ग्रहके रूप हैं। रविवारके दिन दसवाँ और चौदहवाँ यामार्ध, सोमवारको आठवाँ और बारहवाँ, भौमवारको छठा और दसवाँ, बुधवारको नवाँ, बृहस्पतिको दूसरा और छठा, शुक्रको चौथा, आठवाँ और दसवाँ, शनिवारको पहिला, सोलहवाँ, दूसरा और बारहवाँ प्रहरार्ध अशुभ है। इन समयोंमें सर्पके काटनेसे व्यक्ति जीवित नहीं रहता। (अध्याय ३४)



सर्पोंके विषका वेग, फैलाव तथा सात धातुओंमें प्राप्त विषके लक्षण और उनकी चिकित्सा

कश्यपजी बोले—गौतम! यदि यह ज्ञात हो जाय कि सर्पने अपने यमदूती नामक दाढ़से काटा है तो उसकी चिकित्सा न करे। उस व्यक्तिको मरा हुआ ही समझे*। दिनमें और रातमें दूसरा और सोलहवाँ प्रहरार्ध साँपोंसे सम्बन्धित नागोदय नामक वेला कही गयी है। उसमें साँप काटे तो कालके द्वारा काटा गया समझना चाहिये और उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। पानीमें बाल डुबोनेपर और उसे उठानेपर बालके अग्रभागसे जितना जल गिरता है, उतनी ही मात्रामें विष सर्प

प्रविष्ट कराता है। वह विष सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। जितनी देरमें हाथ पसारना और समेटना होता है, उतने ही सूक्ष्म समयमें काटनेके बाद विष मस्तकमें पहुँच जाता है। हवासे आगकी लपट फैलनेके समान रक्तमें पहुँचनेपर विषकी बहुत वृद्धि हो जाती है। जैसे जलमें तेलकी बूँद फैल जाती है, वैसे ही त्वचामें पहुँचकर विष दूना हो जाता है। रक्तमें चौगुना, पित्तमें आठ गुना, कफमें सोलह गुना, वातमें तीस गुना, मज्जामें साठ गुना और प्राणोंमें पहुँचकर वही विष अनन्त

* गारुडोपनिषद् एवं ताक्ष्योपनिषद्में यमदूतीके नामसे भी मन्त्र पढ़े गये हैं, यहाँ मध्यम नियमका वर्णन है। वैसे भगवत्कृपासे कुछ भी असाध्य नहीं है।

गुना हो जाता है। इस प्रकार सारे शरीरमें विषके व्याप्त हो जाने तथा श्रवणशक्ति बंद हो जानेपर वह जीव श्वास नहीं ले पाता और उसका प्राणान्त हो जाता है। यह शरीर पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे बना है, मृत्युके बाद भूत-पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं और अपने-अपनेमें लीन हो जाते हैं। अतः विषकी चिकित्सा बहुत शीघ्र करनी चाहिये, विलम्ब होनेसे रोग असाध्य हो जाता है। सर्पादि जीवोंका विष जिस प्रकार प्राण हरण करनेवाला होता है, वैसे ही शंखिया आदि विष भी प्राणको हरण करनेवाले होते हैं।

विषके पहले वेगमें रोमाञ्च तथा दूसरे वेगमें पसीना आता है। तीसरे वेगमें शरीर काँपता है तथा चौथेमें श्रवणशक्ति अवरुद्ध होने लगती है, पाँचवेंमें हिचकी आने लगती है और छठेमें ग्रीवा लटक जाती है तथा सातवें वेगमें प्राण निकल जाते हैं। इन सात वेगोंमें शरीरके सातों धातुओंमें विष व्याप्त हो जाता है। इन धातुओंमें पहुँचे हुए विषका अलग-अलग लक्षण तथा उपचार इस प्रकार है—

आँखोंके आगे अँधेरा छा जाय और शरीरमें बार-बार जलन होने लगे तो यह जानना चाहिये कि विष त्वचामें है। इस अवस्थामें आककी जड़, अपामार्ग, तगर और प्रियंगु—इनको जलमें घोंटकर पिलानेसे विषकी बाधा शान्त हो सकती है। त्वचासे रक्तमें विष पहुँचनेपर शरीरमें दाह और मूर्च्छा होने लगती है। शीतल पदार्थ अच्छा लगता है। उशीर (खस), चन्दन, कूट, तगर, नीलोत्पल, सिंदुवारकी जड़, धतूरेकी जड़, हींग और मिरच—इनको पीसकर देना चाहिये। इससे बाधा शान्त न हो तो भटकटैया, इन्द्रायणकी जड़ और सर्पगन्धाको घीमें पीसकर देना चाहिये। यदि इससे भी शान्त न हो तो सिंदुवार और

हींगका नस्य देना चाहिये और पिलाना चाहिये। इसीका अञ्जन और लेप भी करना चाहिये, इससे रक्तमें प्राप्त विषकी बाधा शान्त हो जाती है।

रक्तसे पित्तमें विष पहुँच जानेपर पुरुष उठ-उठकर गिरने लगता है, शरीर पीला हो जाता है, सभी दिशाएँ पीले वर्णकी दिखायी देती हैं, शरीरमें दाह और प्रबल मूर्च्छा होने लगती है। इस अवस्थामें पीपल, शहद, महुआ, घी, तुम्बेकी जड़, इन्द्रायणकी जड़—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य, लेपन तथा अञ्जन करनेसे विषका वेग हट जाता है।

पित्तसे विषके कफमें प्रवेश कर जानेपर शरीर जकड़ जाता है। श्वास भलीभाँति नहीं आती, कण्ठमें घर्घर शब्द होने लगता है और मुखसे लार गिरने लगती है। यह लक्षण देखकर पीपल, मिरच, सोंठ, श्लेष्मातक (बहुवार वृक्ष), लोध एवं मधुसारको समान भाग करके गोमूत्रमें पीसकर लेपन और अञ्जन लगाना चाहिये और उसे पिलाना भी चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग शान्त हो जाता है।

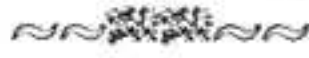
कफसे वातमें विष प्रवेश करनेपर पेट फूल जाता है, कोई भी पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता, दृष्टि-भंग हो जाता है। ऐसा लक्षण होनेपर शोणा (सोनागाछ)—की जड़, प्रियाल, गजपीपल, भारंगी, वचा, पीपल, देवदारु, महुआ, मधुसार, सिंदुवार और हींग—इन सबको पीसकर गोली बना ले और रोगीको खिलाये एवं अञ्जन तथा लेपन करे। यह ओषधि सभी विषोंका हरण करती है।

वातसे मज्जामें विष पहुँच जानेपर दृष्टि नष्ट हो जाती है, सभी अङ्ग बेसुध हो शिथिल हो जाते हैं, ऐसा लक्षण होनेपर घी, शहद, शर्करायुक्त खस और चन्दनको घोंटकर पिलाना चाहिये और नस्य आदि भी देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग हट जाता है।

मज्जासे मर्मस्थानोंमें विष पहुँच जानेपर सभी

इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं और वह जमीनपर गिर जाता है। काटनेसे रक्त नहीं निकलता, केशके उखाड़नेपर भी कष्ट नहीं होता, उसे मृत्युके ही अधीन समझना चाहिये। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोगीकी साधारण वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकते। जिनके पास सिद्ध मन्त्र और ओषधि होगी वे ही ऐसे रोगियोंके रोगको हटानेमें समर्थ होते हैं। इसके लिये साक्षात् रुद्रने एक ओषधि कही है। मोरका

पित्त तथा मार्जारका पित्त और गन्धनाडीकी जड़, कुंकुम, तगर, कूट, कासमर्दकी छाल तथा उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनोंके केसर—सभीका समान भाग लेकर उसे गोमूत्रमें पीसकर नस्य दे, अञ्जन लगाये। ऐसा करनेसे कालसर्पसे डँसा हुआ भी व्यक्ति शीघ्र विषरहित हो जाता है यह मृतसंजीवनी ओषधि है अर्थात् मरेको भी जिला देती है। (अध्याय ३५)



सर्पोंकी भिन्न-भिन्न जातियाँ, सर्पोंके काटनेके लक्षण, पञ्चमी तिथिका नागोंसे सम्बन्ध और पञ्चमी-तिथिमें नागोंके पूजनका फल एवं विधान

गौतम मुनिने कश्यपजीसे पूछा—महात्मन्! सर्प, सर्पिणी, बालसर्प, सूतिका, नपुंसक और व्यन्तर नामक सर्पोंके काटनेमें क्या भेद होता है, इनके लक्षण आप अलग-अलग बतायें।

कश्यपजी बोले—मैं इन सबको तथा सर्पोंके रूप-लक्षणोंको संक्षेपमें बतलाता हूँ, सुनिये—

यदि सर्प काटे तो दृष्टि ऊपरको हो जाती है, सर्पिणीके काटनेसे दृष्टि नीचे, बालसर्पके काटनेसे दाहिनी ओर और बालसर्पिणीके काटनेसे दृष्टि बायीं ओर झुक जाती है। गर्भिणीके काटनेसे पसीना आता है, प्रसूती काटे तो रोमाञ्च और कम्पन होता है तथा नपुंसकके काटनेसे शरीर टूटने लगता है। सर्प दिनमें, सर्पिणी रात्रिमें और नपुंसक संध्याके समय अधिक विषयुक्त होता है। यदि अँधेरेमें, जलमें, वनमें सर्प काटे या सोते हुए या प्रमत्तको काटे, सर्प न दिखायी पड़े अथवा दिखायी पड़े, उसकी जाति न पहचानी जाय और पूर्वोक्त लक्षणोंकी जानकारी न हो तो वैद्य उसकी कैसे चिकित्सा कर सकता है!

सर्प चार प्रकारके होते हैं—दर्वीकर, मण्डली, राजिल और व्यन्तर। इनमें दर्वीकरका विष वात-स्वभाव, मण्डलीका पित्त-स्वभाव, राजिलका कफ-

स्वभाव और व्यन्तर सर्पका संनिपात-स्वभावका होता है अर्थात् उसमें वात, पित्त और कफ—इन तीनोंकी अधिकता होती है। इन सर्पोंके रक्तकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये। दर्वीकर सर्पमें रक्त कृष्णवर्ण और स्वल्प होता है, मण्डलीमें बहुत गाढ़ा और लाल रंगका रक्त निकलता है, राजिल तथा व्यन्तरमें स्निग्ध और थोड़ा-सा रुधिर निकलता है। इन चार जातियोंके अतिरिक्त सर्पोंकी अन्य कोई पाँचवीं जाति नहीं मिलती। सर्प ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंके होते हैं। ब्राह्मण सर्प काटे तो शरीरमें दाह होता है, प्रबल मूर्च्छा आ जाती है, मुख काला पड़ जाता है, मज्जा स्तम्भित हो जाती है और चेतना जाती रहती है। ऐसे लक्षणोंके दिखायी देनेपर अश्वगन्धा, अपामार्ग, सिंदुवारको घीमें पीसकर नस्य दे और पिलाये तो विषकी निवृत्ति हो जाती है। क्षत्रिय वर्णके सर्पके काटनेपर शरीरमें मूर्च्छा छा जाती है, दृष्टि ऊपरको हो जाती है, अत्यधिक पीड़ा होने लगती है और व्यक्ति अपनेको पहचान नहीं पाता। ऐसे लक्षणोंके होनेपर आककी जड़, अपामार्ग, इन्द्रायण और प्रियंगुको घीमें पीसकर मिला ले तथा इसीका नस्य देनेसे एवं पिलानेसे बाधा मिट

संक्षिप्त भविष्यपुराण

जाती है। वैश्य सर्प डँसे तो कफ बहुत आता है, मुखसे लार बहती है, मूर्च्छा आ जाती है और वह चेतनाशून्य हो जाता है। ऐसा होनेपर अश्वगन्धा, गृहधूम, गुग्गुलु, शिरीष, अर्क, पलाश और श्वेत गिरिकर्णिका (अपराजिता)—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य देने तथा पिलानेसे वैश्य सर्पकी बाधा तत्क्षण दूर हो जाती है। जिस व्यक्तिको शूद्र सर्प काटता है, उसे शीत लगकर ज्वर होता है, सभी अङ्ग चुलचुलाने लगते हैं, इसकी निवृत्तिके लिये कमल, कमलका केसर, लोध्र, क्षौद्र, शहद, मधुसार और श्वेतगिरिकर्णी—इन सबको समान भागमें लेकर शीतल जलके साथ पीसकर नस्य आदि दे और पान कराये। इससे विषका वेग शान्त हो जाता है।

ब्राह्मण सर्प मध्याह्नके पहले, क्षत्रिय सर्प मध्याह्नमें, वैश्य सर्प मध्याह्नके बाद और शूद्र सर्प संध्याके समय विचरण करता है। ब्राह्मण सर्प वायु एवं पुष्प, क्षत्रिय मूषक, वैश्य मेढक और शूद्र सर्प सभी पदार्थोंका भक्षण करता है। ब्राह्मण सर्प आगे, क्षत्रिय दाहिने, वैश्य बायें और शूद्र सर्प पीछेसे काटता है। मैथुनकी इच्छासे पीड़ित सर्प विषके वेगके बढ़नेसे व्याकुल होकर बिना समय भी काटता है। ब्राह्मण सर्पमें पुष्पके समान गन्ध होती है, क्षत्रियमें चन्दनके समान, वैश्यमें घृतके समान और शूद्र सर्पमें मत्स्यके समान गन्ध होती है। ब्राह्मण सर्प नदी, कूप, तालाब, झरने, बाग-बगीचे और पवित्र स्थानोंमें रहते हैं। क्षत्रिय सर्प ग्राम, नगर आदिके द्वार, तालाब, चतुष्पथ तथा तोरण आदि स्थानोंमें, वैश्य सर्प श्मशान, ऊषर स्थान, भस्म, घास आदिके ढेर तथा वृक्षोंमें; इसी प्रकार शूद्र सर्प अपवित्र स्थान, निर्जन वन, शून्य घर, श्मशान आदि बुरे स्थानोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मण सर्प श्वेत एवं कपिल

वर्ण, अग्निके समान तेजस्वी, मनस्वी और सात्त्विक होते हैं। क्षत्रिय सर्प मूँगेके समान रक्तवर्ण अथवा सुवर्णके तुल्य पीत वर्ण तथा सूर्यके समान तेजस्वी, वैश्य सर्प अलसी अथवा बाण-पुष्पके समान वर्णवाले एवं अनेक रेखाओंसे युक्त तथा शूद्र सर्प अञ्जन अथवा काकके समान कृष्णवर्ण और धूम्रवर्णके होते हैं। एक अङ्गुष्ठके अन्तरमें दो दंश हों तो बालसर्पका काटा हुआ जानना चाहिये। दो अङ्गुल अन्तर हो तो तरुण सर्पका, ढाई अङ्गुल अन्तर हो तो वृद्ध सर्पका दंश समझना चाहिये।

अनन्तनाग सामने, वासुकि बायीं ओर, तक्षक दाहिनी ओर देखता है और कर्कोटककी दृष्टि पीछेकी ओर होती है। अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल और कुलिक—ये आठ नाग क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, त्रिशूल, महापद्म, शूल, क्षत्र और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः आठ नागोंके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक—ये दोनों ब्राह्मण नाग-जातियाँ हैं, शंख और वासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और कर्कोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिक नाग शुक्लवर्ण तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हैं, वासुकि और शंखपाल रक्तवर्ण तथा अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पीतवर्ण तथा इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कर्कोटक कृष्णवर्ण तथा यमराजसे उत्पन्न हैं।

सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—राजन्! सर्पोंके ये लक्षण और चिकित्सा महर्षि कश्यपने महामुनि गौतमको उपदेशके प्रसंगमें कहे थे और यह भी बताया कि सदा भक्तिपूर्वक नागोंकी पूजा करे और पञ्चमीको विशेषरूपसे दूध, खीर आदिसे उनका पूजन करे। श्रावण शुक्ला पञ्चमीको द्वारके दोनों ओर गोबरके द्वारा नाग बनाये। दही, दूध,

दूर्वा, पुष्प, कुश, गन्ध, अक्षत और अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे नागोंका पूजन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ऐसा करनेपर उस पुरुषके कुलमें कभी सर्पोंका भय नहीं होता।

भाद्रपदकी पञ्चमीको अनेक रंगोंके नागोंको चित्रितकर घी, खीर, दूध, पुष्प आदिसे पूजनकर गुग्गुलुकी धूप दे। ऐसा करनेसे तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं और उस पुरुषकी सात पीढ़ीतकको साँपका भय नहीं रहता।

आश्विन मासकी पञ्चमीको कुशका नाग बनाकर

गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। दूध, घी, जलसे स्नान कराये। दूधमें पके हुए गेहूँ और विविध नैवेद्योंका भोग लगाये। इस पञ्चमीको नागकी पूजा करनेसे वासुकि आदि नाग संतुष्ट होते हैं और वह पुरुष नागलोकमें जाकर बहुत कालतक सुखका भोग करता है। राजन्! इस पञ्चमी तिथिके कल्पका मैंने वर्णन किया। जहाँ 'ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा'—यह मन्त्र पढ़ा जाता है, वहाँ कोई सर्प नहीं आ सकता^१।

(अध्याय ३६—३८)



षष्ठी-कल्प-निरूपणमें स्कन्द-षष्ठी-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं षष्ठी तिथि-कल्पका वर्णन करता हूँ। यह तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिको फलाहारकर यह तिथिव्रत किया जाता है^२। यदि राज्यच्युत राजा इस व्रतका अनुष्ठान करे तो वह अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। इसलिये विजयकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिको इस व्रतका प्रयत्न-पूर्वक पालन करना चाहिये।

यह तिथि स्वामिकार्तिकेयको अत्यन्त प्रिय है। इसी दिन कृत्तिकाओंके पुत्र कार्तिकेयका आविर्भाव हुआ था। वे भगवान् शङ्कर, अग्नि तथा गङ्गाके भी पुत्र कहे गये हैं। इसी षष्ठी तिथिको स्वामिकार्तिकेय देवसेनाके सेनापति हुए। इस तिथिको व्रत कर घृत, दही, जल और पुष्पोंसे स्वामिकार्तिकेयको दक्षिणकी ओर मुख कर अर्घ्य देना चाहिये।

अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव।
रुद्रार्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते।
प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हृदयम्॥

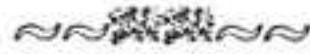
(ब्राह्मपर्व ३९।६)

ब्राह्मणको अन्न देकर रात्रिमें फलका भोजन और भूमिपर शयन करना चाहिये। व्रतके दिन पवित्र रहे और ब्रह्मचर्यका पालन करे। शुक्ल-पक्ष तथा कृष्णपक्ष—दोनों षष्ठियोंको यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे भगवान् स्कन्दकी कृपासे सिद्धि, धृति, तुष्टि, राज्य, आयु, आरोग्य और मुक्ति मिलती है। जो पुरुष उपवास न कर सके, वह रात्रि-व्रत ही करे, तब भी दोनों लोकोंमें उत्तम फल प्राप्त होता है। इस व्रतको करनेवाले पुरुषको देवता भी नमस्कार करते हैं और वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती राजा होता है। राजन्! जो पुरुष षष्ठी-व्रतके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण

१-कश्मीर नागोंका देश माना जाता है। 'नीलमतपुराण' में इसका विस्तृत वर्णन है।

२-पञ्चाङ्गोंके अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको स्कन्द-षष्ठी होती है तथा कार्तिक शुक्ला षष्ठीको रवि-षष्ठी मानी जाती है, जिस दिन सम्पूर्ण भारतमें सूर्योपासना होती है। परंतु यहाँ कार्तिक शुक्ला षष्ठीके रूपमें वर्णन आया है, यह गणना अमान्तमास (अमावास्याको पूर्ण होनेवाले मास)-के अनुसार प्रतीत होती है।

करता है, वह भी स्वामिकार्तिकेयकी कृपासे | प्राप्त करता है। परलोकमें वह उत्तम गतिका भी
विविध उत्तम भोग, सिद्धि, तुष्टि, धृति और लक्ष्मीको | अधिकारी होता है। (अध्याय ३९)



आचरणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

राजा शतानीकने कहा—मुने! अब आप ब्राह्मण आदिके आचरणकी श्रेष्ठताके विषयमें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! मैं अत्यन्त संक्षेपमें इस विषयको बताता हूँ, उसे आप सुनें। न्याय-मार्गका अनुसरण करनेवाले शास्त्रकारोंने कहा है कि 'वेद आचारहीनको पवित्र नहीं कर सकते, भले ही वह सभी अङ्गोंके साथ वेदोंका अध्ययन कर ले। वेद पढ़ना तो ब्राह्मणका शिल्पमात्र है, किंतु ब्राह्मणका मुख्य लक्षण तो सदाचरण ही बतलाया गया है*।' चारों वेदोंका अध्ययन करनेपर भी यदि वह आचरणसे हीन है तो उसका अध्ययन वैसे ही निष्फल होता है, जिस प्रकार नपुंसकके लिये स्त्रीरत्न निष्फल होता है।

जिनके संस्कार उत्तम होते हैं, वे भी दुराचरण कर पतित हो जाते हैं और नरकमें पड़ते हैं तथा संस्कारहीन भी उत्तम आचरणसे अच्छे कहलाते हैं एवं स्वर्ग प्राप्त करते हैं। मनमें दुष्टता भरी रहे, बाहरसे सब संस्कार हुए हों, ऐसे वैदिक संस्कारोंसे संस्कृत कतिपय पुरुष आचरणमें शूद्रोंसे भी अधिक मलिन हो जाते हैं। क्रूर कर्म करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुदारगामी, चोर, गौओंको मारनेवाला, मद्यपायी, परस्त्रीगामी, मिथ्यावादी, नास्तिक, वेदनिन्दक, निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेवाला यदि ब्राह्मण है और सभी तरहके संस्कारसे सम्पन्न भी है, वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत भी है, फिर भी उसकी सद्गति नहीं होती। दयाहीन, हिंसक, अतिशय

दाम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन (चुगलखोर), अतिशय दुष्ट पुरुष वेद पढ़कर भी संसारको ठगते हैं और वेदको बेचकर अपना जीवन-यापन करते हैं, अनेक प्रकारके छल-छिद्रसे प्रजाकी हिंसा कर केवल अपना सांसारिक सुख सिद्ध करते हैं। ऐसे ब्राह्मण शूद्रसे भी अधम हैं।

जो ग्राह्य-अग्राह्यके तत्त्वको जाने, अन्याय और कुमार्गका परित्याग करे, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और सदाचारी हो, नियमोंके पालन, आचार तथा सदाचरणमें स्थिर रहे, सबके हितमें तत्पर रहे, वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रका मर्मज्ञ हो, समाधिमें स्थित रहे, क्रोध, मत्सर, मद तथा शोक आदिसे रहित हो, वेदके पठन-पाठनमें आसक्त रहे, किसीका अत्यधिक सङ्ग न करे, एकान्त और पवित्र स्थानमें रहे, सुख-दुःखमें समान हो, धर्मनिष्ठ हो, पापाचरणसे डरे, आसक्तिरहित, निरहंकार, दानी, शूर, ब्रह्मवेत्ता, शान्त-स्वभाव और तपस्वी हो तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परिनिष्ठित हो—इन गुणोंसे युक्त पुरुष ब्राह्मण होते हैं। ब्रह्मके भक्त होनेसे ब्राह्मण, क्षतसे रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय, वार्ता (कृषि-विद्या आदि)-का सेवन करनेसे वैश्य और शब्द-श्रवणमात्रसे जो द्रुतगति हो जायँ, वे शूद्र कहलाते हैं। क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच, धृति, दया, मृदुता, ऋजुता, संतोष, तप, निरहंकारता, अक्रोध, अनसूया, अतृष्णाता, अस्तेय, अमात्सर्य, धर्मज्ञान, ब्रह्मचर्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैराग्य, पाप-भीरुता, अद्वेष,

* आचारहीनान् न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः । शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ॥

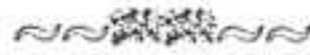
गुरुशुश्रूषा आदि गुण जिनमें रहते हैं, उनका ब्राह्मणत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

शम, तप, दम, शौच, क्षमा, ऋजुता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिक्य—ये ब्राह्मणोंके सहज कर्म हैं। ज्ञानरूपी शिखा, तपोरूपी सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत जिनके रहते हैं, उनको मनुने ब्राह्मण कहा है। पाप-कर्मोंसे निवृत्त होकर उत्तम आचरण करनेवाला

भी ब्राह्मणके समान ही है। शीलसे युक्त शूद्र भी ब्राह्मणसे प्रशस्त हो सकता है और आचाररहित ब्राह्मण भी शूद्रसे अधम हो जाता है।

जिस तरह दैव और पौरुषके मिलनेपर कार्य सिद्ध होते हैं, वैसे ही उत्तम जाति और सत्कर्मका योग होनेपर आचरणकी पूर्णता सिद्ध होती है।

(अध्याय ४०—४५)



भगवान् कार्तिकेय तथा उनके षष्ठी-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! भाद्रपद मासकी षष्ठी तिथि बहुत उत्तम तिथि है, यह सभी पापोंका हरण करनेवाली, पुण्य प्रदान करनेवाली तथा सभी कल्याण-मङ्गलोंको देनेवाली है। यह तिथि कार्तिकेयको अतिशय प्रिय है। इस दिन किया हुआ स्नान, दान आदि सत्कर्म अक्षय होता है। जो दक्षिण दिशा (कुमारिकाक्षेत्र)—में निवास करनेवाले कुमार कार्तिकेयका इस तिथिको दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, इसलिये इस तिथिमें भगवान् कार्तिकेयका अवश्य दर्शन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका पूजन करनेसे मानव मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है और अन्तमें इन्द्रलोकमें निवास करता है। ईंट, पत्थर, काष्ठ आदिके द्वारा श्रद्धापूर्वक कार्तिकेयका मन्दिर बनानेवाला पुरुष स्वर्णके विमानमें बैठकर कार्तिकेयके लोकमें जाता है। इनके मन्दिरपर ध्वजा चढ़ाने तथा झाड़ू-पोंछा (मार्जन) आदि करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है।

चन्दन, अगर, कपूर आदिसे कार्तिकेयकी पूजा करनेपर हाथी, घोड़ा आदि वाहनोंका स्वामी होता है और सेनापतित्व भी प्राप्त होता है। राजाओंको कार्तिकेयकी अवश्य ही आराधना करनी चाहिये। जो राजा कृत्तिकाओंके पुत्र भगवान् कार्तिकेयकी आराधना कर युद्धके लिये प्रस्थान करता है, वह देवराज इन्द्रकी तरह अपने शत्रुओंको परास्त कर देता है। कार्तिकेयकी चम्पक आदि विविध पुष्पोंसे पूजा करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और शिवलोकको प्राप्त करता है। इस भाद्रपद मासकी षष्ठीको तेलका सेवन नहीं करना चाहिये। षष्ठी तिथिको व्रत एवं पूजनकर रात्रिमें भोजन करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति कुमारिकाक्षेत्रमें स्थित भगवान् कार्तिकेयका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, वह अखण्ड शान्ति प्राप्त करता है। (अध्याय ४६)



सप्तमी-कल्पमें भगवान् सूर्यके परिवारका निरूपण एवं शाक-सप्तमी-व्रत

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यका आविर्भाव हुआ था। वे अण्डके साथ उत्पन्न हुए और अण्डमें रहते हुए ही उन्होंने वृद्धि

प्राप्त की। बहुत दिनोंतक अण्डमें रहनेके कारण ये 'मार्तण्ड' के नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये अण्डमें ही स्थित थे तो दक्ष प्रजापतिने अपनी रूपवती कन्या रूपाको भार्याके रूपमें इन्हें अर्पित

किया*। दक्षकी आज्ञासे विश्वकर्माने इनके शरीरका संस्कार किया, जिससे ये अतिशय तेजस्वी हो गये। अण्डमें स्थित रहते ही इन्हें यमुना एवं यम नामकी दो संतानें प्राप्त हुई। भगवान् सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण उनकी स्त्री व्याकुल हो सोचने लगी—इनके अतिशय तेजके कारण मेरी दृष्टि इनकी ओर ठहर नहीं पाती, जिससे इनके अङ्गोंको मैं देख नहीं पा रही हूँ। मेरा सुवर्ण-वर्ण, कमनीय शरीर इनके तेजसे दग्ध हो श्यामवर्णका हो गया है। इनके साथ मेरा निर्वाह होना बहुत कठिन है। यह सोचकर उसने अपनी छायासे एक स्त्री उत्पन्न कर उससे कहा—‘तुम भगवान् सूर्यके समीप मेरी जगह रहना, परंतु यह भेद खुलने न पाये।’ ऐसा समझाकर उसने उस छाया नामकी स्त्रीको वहाँ रख दिया तथा अपनी संतान यम और यमुनाको वहीं छोड़कर वह तपस्या करनेके लिये उत्तरकुरु देशमें चली गयी और वहाँ घोड़ीका रूप धारण कर तपस्यामें रत रहते हुए इधर-उधर अनेक वर्षोंतक घूमती रही।

भगवान् सूर्यने छायाको ही अपनी पत्नी समझा। कुछ समयके बाद छायासे शनैश्चर और तपती नामकी दो संतानें उत्पन्न हुई। छाया अपनी संतानपर यमुना तथा यमसे अधिक स्नेह करती थी। एक दिन यमुना और तपतीमें विवाद हो गया। पारस्परिक शापसे दोनों नदी हो गयीं। एक बार छायाने यमुनाके भाई यमको ताड़ित किया। इसपर यमने क्रुद्ध होकर छायाको मारनेके लिये पैर उठाया। छायाने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—‘मूढ़! तुमने मेरे ऊपर चरण उठाया है, इसलिये तुम्हारा प्राणियोंका प्राणहिंसक रूपी यह बीभत्स कर्म तबतक रहेगा, जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे। यदि तुम मेरे शापसे कलुषित अपने पैरको

पृथ्वीपर रखोगे तो कृमिगण उसे खा जायेंगे।’

यम और छायाका इस प्रकार विवाद हो ही रहा था कि उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे। यमने अपने पिता भगवान् सूर्यसे कहा—‘पिताजी! यह हमारी माता कदापि नहीं हो सकती, यह कोई और स्त्री है। यह हमें नित्य क्रूर भावसे देखती है और हम सभी भाई-बहनोंमें समान दृष्टि तथा समान व्यवहार नहीं रखती। यह सुनकर भगवान् सूर्यने क्रुद्ध होकर छायासे कहा—‘तुम्हें यह उचित नहीं है कि अपनी संतानोंमें ही एकसे प्रेम करो और दूसरेसे द्वेष। जितनी संतानें हों सबको समान ही समझना चाहिये। तुम विषम-दृष्टिसे क्यों देखती हो? यह सुनकर छाया तो कुछ न बोली, पर यमने पुनः कहा—‘पिताजी! यह दुष्टा मेरी माता नहीं है, बल्कि मेरी माताकी छाया है। इसीसे इसने मुझे शाप दिया है।’ यह कहकर यमने पूरा वृत्तान्त उन्हें बतला दिया। इसपर भगवान् सूर्यने कहा—‘बेटा! तुम चिन्ता न करो। कृमिगण मांस और रुधिर लेकर भूलोकको चले जायेंगे, इससे तुम्हारा पाँव गलेगा नहीं, अच्छा हो जायगा और ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम लोकपालपदको भी प्राप्त करोगे। तुम्हारी बहन यमुनाका जल गङ्गाजलके समान पवित्र हो जायगा और तपतीका जल नर्मदाजलके तुल्य पवित्र माना जायगा। आजसे यह छाया सबके देहोंमें अवस्थित होगी।’

ऐसी व्यवस्था और मर्यादा स्थिर कर भगवान् सूर्य दक्ष प्रजापतिके पास गये और उन्हें अपने आगमनका कारण बताते हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर दक्ष प्रजापतिने कहा—‘आपके अति प्रचण्ड तेजसे व्याकुल होकर आपकी भार्या उत्तरकुरु देशमें चली गयी है। अब आप विश्वकर्मासे अपना रूप प्रशस्त करवा लें।’ यह कहकर उन्होंने

* सूर्यकी पत्नी ‘रूपा’ का दूसरा नाम ‘संज्ञा’ है। अन्य पुराणोंमें संज्ञाको विश्वकर्माकी पुत्री कहा गया है।

विश्वकर्माको बुलाकर उनसे कहा—‘विश्वकर्मन्! आप इनका सुन्दर रूप प्रकाशित कर दें।’ तब सूर्यकी सम्मति पाकर विश्वकर्माने अपने तक्षण-कर्मसे सूर्यको खरादना प्रारम्भ किया। अङ्गोंके तराशनेके कारण सूर्यको अतिशय पीड़ा हो रही थी और बार-बार मूर्च्छा आ जाती थी। इसीलिये विश्वकर्माने सब अङ्ग तो ठीक कर लिये, पर जब पैरोंकी अङ्गुलियोंको छोड़ दिया तब सूर्य भगवान् ने कहा—‘विश्वकर्मन्! आपने तो अपना कार्य पूर्ण कर लिया, परंतु हम पीड़ासे व्याकुल हो रहे हैं। इसका कोई उपाय बताइये।’ विश्वकर्माने कहा—‘भगवन्! आप रक्त चन्दन और करवीरके पुष्पोंका सम्पूर्ण शरीरमें लेप करें, इससे तत्काल यह वेदना शान्त हो जायगी।’ भगवान् सूर्यने विश्वकर्माके कथनानुसार अपने सारे शरीरमें इनका लेप किया, जिससे उनकी सारी वेदना मिट गयी। उसी दिनसे रक्त चन्दन और करवीरके पुष्प भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हो गये और उनकी पूजामें प्रयुक्त होने लगे। सूर्यभगवान् के शरीरके खरादनेसे जो तेज निकला, उस तेजसे दैत्योंके विनाश करनेवाले वज्रका निर्माण हुआ।

भगवान् सूर्यने भी अपना उत्तम रूप प्राप्तकर प्रसन्नमनसे अपनी भार्याके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे तत्काल उत्तरकुरुकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि वह घोड़ीका रूप धारण कर विचरण कर रही है। भगवान् सूर्य भी अश्वका रूप धारण कर उससे मिले।

पर-पुरुषकी आशंकासे उसने अपने दोनों नासापुटोंसे सूर्यके तेजको एक साथ बाहर फेंक दिया, जिससे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई और यही देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। तपती, शनि और सावर्णि—ये तीन संतानें छायासे और यमुना तथा यम

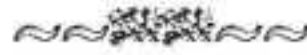
संज्ञासे उत्पन्न हुए। सूर्यको अपनी भार्या उत्तरकुरुमें सप्तमी तिथिके दिन प्राप्त हुई, उन्हें दिव्य रूप सप्तमी तिथिको ही मिला तथा संतानें भी इसी तिथिको प्राप्त हुई, अतः सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यको अतिशय प्रिय है।

जो व्यक्ति पञ्चमी तिथिको एक समय भोजन कर षष्ठीको उपवास करता है तथा सप्तमीको दिनमें उपवास कर भक्ष्य-भोज्योंके साथ विविध शाक-पदार्थोंको भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर ब्राह्मणोंको देता है तथा रात्रिमें मौन होकर भोजन करता है, वह अनेक प्रकारके सुखोंका भोग करता है तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करता एवं अन्तमें उत्तम विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोत्तक निवासकर पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रोंसे समन्वित चक्रवर्ती राजा होता है तथा दीर्घकालपर्यन्त निष्कण्टक राज्य करता है।

राजा कुरुने इस सप्तमी-व्रतका बहुत कालतक अनुष्ठान किया और केवल शाकका ही भोजन किया। इसीसे उन्होंने कुरुक्षेत्र नामक पुण्यक्षेत्र प्राप्त किया और इसका नाम रखा धर्मक्षेत्र। सप्तमी, नवमी, षष्ठी, तृतीया और पञ्चमी—ये तिथियाँ बहुत उत्तम हैं और स्त्री-पुरुषोंको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली हैं। माघकी सप्तमी, आश्विनकी नवमी, भाद्रपदकी षष्ठी, वैशाखकी तृतीया और भाद्रपद मासकी पञ्चमी—ये तिथियाँ इन महीनोंमें विशेष प्रशस्त मानी गयी हैं। कार्तिक शुक्ला सप्तमीसे इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये। उत्तम शाकको सिद्ध कर ब्राह्मणोंको देना चाहिये और रात्रिमें स्वयं भी शाक ही ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार चार मासतक व्रतकर व्रतका पहला पारण करना चाहिये। उस दिन पञ्चगव्यसे सूर्यभगवान् को स्नान कराना चाहिये और स्वयं भी पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये, अनन्तर केसरका

चन्दन, अगस्त्यके पुष्प, अपराजित नामक धूप और पायसका नैवेद्य सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भी पायसका भोजन कराना चाहिये। दूसरे पारणमें कुशाके जलसे भगवान् सूर्यनारायणको स्नान कराकर स्वयं गोमयका प्राशन करना चाहिये और श्वेतचन्दन, सुगन्धित पुष्प, अगरुका धूप तथा गुडके अपूप नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये और वर्षके समाप्त होनेपर तीसरा पारण करना चाहिये। गौर सर्पपका उबटन लगाकर भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर रक्तचन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलुका धूप और अनेक भक्ष्य-भोज्यसहित दही-भात नैवेद्यमें अर्पण करना

चाहिये तथा यही ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायणके सम्मुख ब्राह्मणसे पुराण-श्रवण करना चाहिये अथवा स्वयं बाँचना चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणको भोजन कराकर पौराणिकको वस्त्र-आभूषण, दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। पौराणिकके संतुष्ट होनेपर भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो जाते हैं। रक्त चन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलुका धूप, मोदक, पायसका नैवेद्य, घृत, ताम्रपात्र, पुराण-ग्रन्थ और पौराणिक—ये सब भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। राजन्! यह शाक-सप्तमी-व्रत भगवान् सूर्यको अति प्रिय है। इस व्रतका करनेवाला पुरुष भाग्यशाली होता है। (अध्याय ४७)



श्रीकृष्ण-साम्ब-संवाद तथा भगवान् सूर्यनारायणकी पूजन-विधि

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! भगवान् सूर्यनारायणका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, इसलिये सप्तमी-कल्पका आप पुनः कुछ और विस्तारसे वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनके पुत्र साम्बका जो परस्पर संवाद हुआ था, उसीका मैं वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

एक समय साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—‘पिताजी! मनुष्य संसारमें जन्म-ग्रहणकर कौन-सा कर्म करे, जिससे उसे दुःख न हो और मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर वह स्वर्ग प्राप्त करे तथा मुक्ति भी प्राप्त कर सके। इन सबका आप वर्णन करें। मेरा मन इस संसारमें अनेक प्रकारकी आधि-व्याधियोंको देखकर अत्यन्त उदास हो रहा है, मुझे क्षणमात्र भी जीनेकी इच्छा नहीं होती, अतः आप कृपाकर ऐसा उपाय बतायें कि जितने

दिन भी इस संसारमें रहा जाय, ये आधि-व्याधियाँ पीडित न कर सकें और फिर इस संसारमें जन्म न हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाय।’

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! देवताओंके प्रसादसे, उनके अनुग्रहसे तथा उनकी आराधना करनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है। देवताओंकी आराधना ही परम उपाय है। देवता अनुमान और आगम-प्रमाणोंसे सिद्ध होते हैं। विशिष्ट पुरुष विशिष्ट देवताकी आराधना करे तो वह विशिष्ट फल प्राप्त कर सकता है।

साम्बने कहा—महाराज! प्रथम तो देवताओंके अस्तित्वमें ही संदेह है, कुछ लोग कहते हैं देवता हैं और कुछ कहते हैं कि देवता नहीं हैं, फिर विशिष्ट देवता किन्हें समझा जाय?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वत्स! आगमसे, अनुमानसे और प्रत्यक्षसे देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—यदि देवता प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकते हैं तो फिर उनके साधनके लिये अनुमान और आगम-प्रमाणकी कुछ भी अपेक्षा नहीं है।

श्रीकृष्ण बोले—वत्स! सभी देवता प्रत्यक्ष नहीं होते। शास्त्र और अनुमानसे ही हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—पिताजी! जो देवता प्रत्यक्ष हैं और विशिष्ट एवं अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं, पहले आप उन्हींका वर्णन करें। अनन्तर शास्त्र तथा अनुमानसे सिद्ध होनेवाले देवताओंका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो संसारके नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण ही हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। सम्पूर्ण जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और अन्तमें इन्हींमें विलीन भी हो जायगा*।

सत्य आदि युगों और कालकी गणना इन्हींसे सिद्ध होती है। ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, राशि, आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, अग्नि, अश्विनीकुमार, इन्द्र, प्रजापति, दिशाएँ, भूः, भुवः, स्वः—ये सभी लोक और पर्वत, नदी, समुद्र, नाग तथा सम्पूर्ण भूतग्रामकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। यह सम्पूर्ण चराचर-जगत् इनकी ही इच्छासे उत्पन्न हुआ है। इनकी ही इच्छासे स्थित है और सभी इनकी ही इच्छासे अपने-अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं। इन्हींके अनुग्रहसे यह सारा संसार प्रयत्नशील दिखायी देता है। सूर्यभगवान्के उदयके साथ जगत्का उदय और उनके अस्त होनेके साथ जगत् अस्त होता है। इनसे अधिक न कोई देवता हुआ और न होगा। वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास-

पुराणादिमें इनका परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादन किया गया है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। इनके सम्पूर्ण गुणों और प्रभावोंका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। इसीलिये दिवाकर, गुणाकर, सबके स्वामी, सबके स्रष्टा और सबका संहार करनेवाले भी ये ही कहे गये हैं। ये स्वयं अव्यय हैं।

जो पुरुष सूर्य-मण्डलकी रचना कर प्रातः, मध्याह्न और सायं उनकी पूजा कर उपस्थान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है। फिर जो प्रत्यक्ष सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसके लिये कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है। जो अपनी अन्तरात्मामें ही मण्डलस्थ भगवान् सूर्यको अपनी बुद्धिद्वारा निश्चित कर लेता है तथा ऐसा समझकर वह इनका ध्यानपूर्वक पूजन, हवन एवं जप करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त करता है और अन्तमें इनके लोकको प्राप्त होता है। इसलिये हे पुत्र! यदि तुम संसारमें सुख चाहते हो और भुक्ति तथा मुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यकी तन्मयतासे आराधना करो। इससे तुम्हें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कोई भी दुःख नहीं होंगे। जो सूर्यभगवान्की शरणमें जाते हैं, उनको किसी प्रकारका भय नहीं होता और उन्हें इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। स्वयं मैंने भगवान् सूर्यकी बहुत कालतक यथाविधि आराधना की है, उन्हींकी कृपासे यह दिव्य ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है। इससे बढ़कर मनुष्योंके हितका और कोई उपाय नहीं है। (अध्याय ४८)



* प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः। तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥

यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च। (ब्राह्मपर्व ४८। २१-२२)

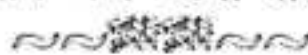
श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चनका विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्ब! अब हम सूर्यनारायणके पूजनका विधान बताते हैं, जिसके करनेसे सम्पूर्ण पाप और विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा सभी मनोरथोंकी सिद्धि होती है और पुण्य भी प्राप्त होता है। प्रातःकाल उठकर शौच आदिसे निवृत्त हो नदीके तटपर जाकर आचमन करे तथा सूर्योदयके समय शुद्ध मृत्तिकाका शरीरपर लेपन कर स्नान करे। पुनः आचमन कर शुद्ध वस्त्र धारण करे और सप्ताक्षर-मन्त्र 'ॐ खखोल्काय स्वाहा' से सूर्यभगवान्को अर्घ्य दे तथा हृदयमें मन्त्रका ध्यान करे एवं सूर्य-मन्दिरमें जाकर सूर्यकी पूजा करे। सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक पूरक, रेचक और कुम्भक नामक प्राणायाम कर वायवी, आप्रेयी, माहेन्द्री तथा वारुणी धारणा करके भूतशुद्धिकी रीतिसे शरीरका शोषण, दहन, स्तम्भन एवं प्लावन करके अपने शरीरकी शुद्धि कर ले। अपने शुद्ध हृदयमें भगवान् सूर्यकी भावना कर उन्हें प्रणाम करे। स्थूल, सूक्ष्म शरीर तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानोंमें उपन्यस्त करे। 'ॐ खः स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ खं स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ उल्काय स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ याय स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ स्वाँ स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हाँ स्वाहा अस्त्राय फट्।'।

—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास कर पूजन-सामग्रीका मूल मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलद्वारा प्रोक्षण करे। फिर सुगन्धित पुष्पादि उपचारोंसे सूर्यभगवान्का पूजन करे। सूर्यनारायणकी पूजा दिनके समय सूर्य-मूर्तिमें और रात्रिके समय अग्रिमें करनी चाहिये। प्रभातकालमें पूर्वाभिमुख, सायंकालमें पश्चिमाभिमुख तथा रात्रिमें उत्तराभिमुख होकर पूजन करनेका विधान है। 'ॐ खखोल्काय स्वाहा' इस सप्ताक्षर मूल मन्त्रसे सूर्यमण्डलके बीच षट्दल-कमलका ध्यान कर

उसके मध्यमें सहस्र किरणोंसे देदीप्यमान भगवान् सूर्यनारायणकी मूर्तिका ध्यान करे। फिर रक्त चन्दन, करवीर आदि रक्त पुष्पों, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, वस्त्राभूषण आदि उपचारोंसे पूजन करे अथवा रक्त चन्दनसे ताम्रपात्रमें षट्दल-कमल बनाकर उसके मध्यमें सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करे। छहों दलोंमें षडङ्ग-पूजन कर उत्तर आदि दिशाओंमें सोमादि आठ ग्रहोंका अर्चन करे और अष्टदिक्पालों तथा उनके आयुधोंका भी तत्तद् दिशाओंमें पूजन करे। नामके आदिमें 'प्रणव' लगाकर नामको चतुर्थी-विभक्तियुक्त करके अन्तमें 'नमः' कहे—जैसे 'ॐ सोमाय नमः' इत्यादि। इस प्रकार नाममन्त्रोंसे सबका पूजन करे। अनन्तर व्योम-मुद्रा, रवि-मुद्रा, पद्म-मुद्रा, महाश्वेत-मुद्रा और अस्त्र-मुद्रा दिखाये। ये पाँच मुद्राएँ पूजा, जप, ध्यान, अर्घ्य आदिके अनन्तर दिखानी चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक भक्तिपूर्वक तन्मयताके साथ भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करनेसे अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होती है और बादमें मुक्ति भी प्राप्त होती है। इस विधिसे पूजन करनेपर रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, धनहीन धन प्राप्त करता है, राज्यभ्रष्टको राज्य मिल जाता है तथा पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है। सूर्यनारायणका पूजन करनेवाला पुरुष प्रज्ञा, मेधा तथा सभी समृद्धियोंसे सम्पन्न होता हुआ चिरंजीवी होता है। इस विधिसे पूजन करनेपर कन्याको उत्तम वरकी, कुरूपा स्त्रीको उत्तम सौभाग्यकी तथा विद्यार्थीको सद्बिद्याकी प्राप्ति होती है। ऐसा सूर्यभगवान्ने स्वयं अपने मुखसे कहा है। इस प्रकार सूर्यभगवान्का पूजन करनेसे धन, धान्य, संतान, पशु आदिकी नित्य अभिवृद्धि होती है। मनुष्य निष्काम हो जाता है तथा अन्तमें उसे सद्गति प्राप्त होती है। (अध्याय ४९)



भगवान् सूर्यके पूजन एवं व्रतोद्यापनका विधान, द्वादश आदित्योंके नाम और रथसप्तमी-व्रतकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्ब! अब मैं सूर्यके विशिष्ट अवसरोंपर होनेवाले व्रत-उत्सव एवं पूजनकी विधियोंका वर्णन करता हूँ, उन्हें सुनो। किसी मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी, ग्रहण या संक्रान्तिके एक दिन-पूर्व एक बार हविष्यान्नका भोजन कर सायंकालके समय भलीभाँति आचमन आदि करके अरुणदेवको प्रणाम करना चाहिये तथा सभी इन्द्रियोंको संयतकर भगवान् सूर्यका ध्यान कर रात्रिमें जमीनपर कुशकी शय्यापर शयन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक स्नान सम्पन्न करके संध्या करे तथा पूर्वोक्त मन्त्र 'ॐ खखोल्काय स्वाहा' का जप एवं सूर्यभगवान्की पूजा करे। अग्रिको सूर्यतापके रूपमें समझकर वेदी बनाये और संक्षेपमें हवन तथा तर्पण करे। गायत्री-मन्त्रसे प्रोक्षणकर पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुशा बिछाये। अनन्तर सभी पात्रोंका शोधन कर दो, कुशाओंकी प्रादेशमात्रकी एक पवित्री बनाये। उस पवित्रीसे सभी वस्तुओंका प्रोक्षण करे, घीको अग्रिपर रखकर पिघला ले, उत्तरकी ओर पात्रमें उसे रख दे, अनन्तर जलते हुए उल्मुकसे पर्याग्निकरण करते हुए घृतका तीन बार उत्प्लवन करे। स्तुवा आदिका कुशोंके द्वारा परिमार्जन और सम्प्रोक्षण करके अग्रिमें सूर्यदेवकी पूजा करे और दाहिने हाथमें स्तुवा ग्रहणकर मूल मन्त्रसे हवन करे। मनोयोगपूर्वक मौन धारण कर सभी क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके पश्चात् तर्पण करे। अनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति उनको दक्षिणा भी देनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी

प्राप्ति होती है।

माघ मासकी सप्तमीको वरुण नामक सूर्यकी पूजा करे। इसी प्रकार क्रमशः फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमें वैशाख*, वैशाखमें धाता, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें नभ, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें पर्जन्य, कार्तिकमें त्वष्टा, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौष मासमें विष्णु नामक सूर्यका अर्चन करे। इस विधिसे बारहों मासमें अलग-अलग नामोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एक दिन पूजा करनेसे वर्षपर्यन्त की गयी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त विधिसे एक वर्षतक व्रत कर रत्नजटित सुवर्णका एक रथ बनवाये और उसमें सात घोड़े बनवाये। रथके मध्यमें सोनेके कमलके ऊपर रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत सूर्यनारायणकी सोनेकी मूर्ति स्थापित करे। रथके आगे उनके सारथिको बैठाये। अनन्तर बारह ब्राह्मणोंमें बारह महीनोंके सूर्योंकी भावना कर तेरहवें मुख्य आचार्यको साक्षात् सूर्यनारायण समझकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें रथ, छत्र, भूमि, गौ आदि समर्पित करे। इसी प्रकार रत्नोंके आभूषण, वस्त्र, दक्षिणा और एक-एक घोड़ा उन बारह ब्राह्मणोंको दे तथा हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करे—'ब्राह्मण देवताओ! इस सूर्यव्रतके उद्यापन करनेके बाद यदि असमर्थतावश कभी सूर्यव्रत न कर सकूँ तो मुझे दोष न हो।' ब्राह्मणोंके साथ आचार्य भी 'एवमस्तु' ऐसा कहकर यजमानको आशीर्वाद दे और कहे—'सूर्यभगवान् तुमपर प्रसन्न हों। जिस मनोरथकी पूर्तिके लिये तुमने यह व्रत किया है और भगवान् सूर्यकी पूजा

* प्रायः अन्य सभी पुराणोंमें चैत्रादि बारह महीनोंमें सूर्यके ये नाम मिलते हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा और विष्णु। कल्पभेदके अनुसार नामोंमें भेद है।

की है, वह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो और भगवान् सूर्य उसे पूरा करें। अब व्रत न करनेपर भी तुमको दोष नहीं होगा।' इस प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर दीनों, अन्धों तथा अनाथोंको यथाशक्ति भोजन कराये और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, दक्षिणा देकर व्रतकी समाप्ति करे।

जो व्यक्ति इस सप्तमी-व्रतको एक वर्षतक करता है, वह सौ योजन लम्बे-चौड़े देशका धार्मिक राजा होता है और इस व्रतके फलसे सौ वर्षोंसे भी अधिक निष्कण्टक राज्य करता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह राजपत्नी होती है। निर्धन व्यक्ति इस व्रतको यथाविधि सम्पन्न कर बतलायी हुई विधिके अनुसार ताँबेका रथ ब्राह्मणको देता है तो वह अस्सी योजन लम्बा-चौड़ा राज्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार आटेका रथ बनवाकर दान करनेवाला साठ योजन विस्तृत राज्य प्राप्त करता है तथा वह चिरायु, नीरोग और सुखी रहता है। इस व्रतको करनेसे पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करनेके पश्चात् राजा होता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् सूर्यकी मानसिक आराधना भी करता है तो वह भी समस्त आधि-व्याधियोंसे रहित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार भगवान् सूर्यको कुहरा स्पर्श नहीं कर पाता, उसी प्रकार मानसिक पूजा करनेवाले साधकको किसी प्रकारकी आपत्तियाँ स्पर्श नहीं कर पातीं। यदि किसीने मन्त्रोंके द्वारा भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे व्रत सम्पन्न करते हुए भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की तो फिर उसके विषयमें क्या कहना? इसलिये अपने कल्याणके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पुत्र! सूर्यनारायणने इस विधि-विधानको स्वयं

अपने मुखसे मुझसे कहा था। आजतक उसे गुप्त रखकर पहली बार मैंने तुमसे कहा है। मैंने इसी व्रतके प्रभावसे हजारों पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त किया है, दैत्योंको जीता है, देवताओंको वशमें किया है, मेरे इस चक्रमें सदा सूर्यभगवान् निवास करते हैं। नहीं तो इस चक्रमें इतना तेज कैसे होता? यही कारण है कि सूर्यनारायणका नित्य जप, ध्यान, पूजन आदि करनेसे मैं जगत्का पूज्य हूँ। वत्स! तुम भी मन, वाणी तथा कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधना करो। ऐसा करनेसे तुम्हें विविध सुख प्राप्त होंगे। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस विधानको सुनता है, वह भी पुत्र-पौत्र, आरोग्य एवं लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको भी प्राप्त हो जाता है।

भगवान् कृष्णने कहा—साम्ब! माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको एकभुक्त-व्रत और षष्ठीको नक्तव्रत करना चाहिये*। सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठीमें उपवास और सप्तमी तिथिमें पारण करनेका विधान कहते हैं (इस प्रकार विविध मत हैं)। वस्तुतः षष्ठीको उपवास कर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दन, करवीर-पुष्प, गुग्गुल धूप, पायस आदि नैवेद्योंसे माघ आदि चार महीनोंतक सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। आत्मशुद्धिके लिये गोमयमिश्रित जलसे स्नान, गोमयका प्राशन और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि चार महीनोंमें श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, कृष्ण अगरु धूप और उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पण करना चाहिये। इसमें पञ्चगव्यप्राशन कर ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट भोजन कराना चाहिये।

* जिस दिन प्रायः दिनका अधिक अंश बिताकर सायं चार बजेके लगभग भोजन कर पूरी रात उपवास रहकर बिताया जाता है, उसे एकभुक्त-व्रत कहा जाता है और दिनभर उपवासकर रात्रिको भोजन करना 'नक्तव्रत' कहलाता है।

आश्विन आदि चार मासोंमें अगस्त्य-पुष्य, अपराजित धूप और गुड़के पूए आदिका नैवेद्य तथा इक्षुरस भगवान् सूर्यको समर्पित करना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर आत्मशुद्धिके लिये कुशाके जलसे स्नान करना चाहिये। उस दिन कुशोदकका ही प्राशन करे। व्रतकी समाप्तिमें माघ मासकी शुक्ला सप्तमीको रथका दान करे और सूर्यभगवान्की प्रसन्नताके लिये रथयात्रोत्सवका आयोजन करे। महापुण्यदायिनी इस सप्तमीको रथसप्तमी कहा गया है। यह महासप्तमीके नामसे अभिहित है। रथसप्तमीको जो उपवास करता है,

वह कीर्ति, धन, विद्या, पुत्र, आरोग्य, आयु और उत्तमोत्तम कान्ति प्राप्त करता है। हे पुत्र! तुम भी इस व्रतको करो, जिससे तुम्हारे सभी अभीष्टोंकी सिद्धि हो। इतना कहकर शङ्ख, चक्र, गदा-पद्मधारी श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो गये।

सुमन्तुने कहा—राजन्! उनकी आज्ञा पाकर साम्बने भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर हो रथसप्तमीका व्रत किया और कुछ ही समयमें रोगमुक्त होकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लिया*।

(अध्याय ५०-५१)



सूर्यदेवके रथ एवं उसके साथ भ्रमण करनेवाले देवता-नाग आदिका वर्णन

राजा शतानीकने पूछा—मुने! सूर्यनारायणकी रथयात्रा किस विधानसे करनी चाहिये। रथ कैसा बनाना चाहिये? इस रथयात्राका प्रचलन मृत्युलोकमें किसके द्वारा हुआ? इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतलायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! किसी समय सुमेरु पर्वतपर समासीन भगवान् रुद्रने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन्! इस लोकको प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य किस प्रकारके रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं, इसे आप बतायें।’

ब्रह्माजीने कहा—त्रिलोचन! सूर्यनारायण जिस प्रकारके रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सानन्द सुनें।

एक चक्र, तीन नाभि, पाँच अरे तथा स्वर्णमय अति कान्तिमान् आठ बन्धोंसे युक्त एवं एक

नेमिसे सुसज्जित—इस प्रकारके दस हजार योजन लम्बे-चौड़े अतिशय प्रकाशमान स्वर्ण-रथमें विराजमान भगवान् सूर्य विचरण करते रहते हैं। रथके उपस्थसे ईषा-दण्ड तीन-गुना अधिक है। यहीं उनके सारथि अरुण बैठते हैं। इनके रथका जुआ सोनेका बना हुआ है। रथमें वायुके समान वेगवान् छन्दरूपी सात घोड़े जुते रहते हैं। संवत्सरमें जितने अवयव होते हैं, वे ही रथके अङ्ग हैं। तीनों काल चक्रकी तीन नाभियाँ हैं। पाँच ऋतुएँ अरे हैं, छठी ऋतु नेमि है। दक्षिण और उत्तर—ये दो अयन रथके दोनों भाग हैं। मुहूर्त रथके इषु, कला, शम्य, काष्ठाएँ रथके कोण, क्षण अक्षदण्ड, निमेष रथके कर्ण, ईषा-दण्ड लव, रात्रि वरूथ, धर्म रथका ध्वज, अर्थ और काम धुरीका अग्रभाग, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक्—

* रथसप्तमीके विषयमें व्रतरत्नाकर, व्रतकल्पद्रुम, व्रतराज आदिके अतिरिक्त पद्मपुराण एवं वायुपुराणके माघ-माहात्म्यमें बहुत विस्तारसे व्रत-विधानका निरूपण हुआ है और कुछ पञ्चाङ्गोंमें भी इसी दिन भगवान् सूर्यके रथपर चढ़कर आकाशकी प्रथम यात्रा करनेका उल्लेख किया गया है। जैसे रामनवमीके दिन भगवान् रामका, जन्माष्टमीके दिन भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य मानकर उत्सव किया जाता है, वैसे ही रथसप्तमीके दिन भगवान् सूर्यका प्राकट्य मानकर उनके लिये व्रत-उपवासके साथ विशेष अर्चा सम्पन्न की जाती है।

ये सात छन्द सात अश्व हैं। धुरीपर चक्र घूमता है। इस प्रकारके रथमें बैठकर भगवान् सूर्य निरन्तर आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं।

देव, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, ग्रामणी और राक्षस सूर्यके रथके साथ घूमते रहते हैं और दो-दो मासोंके बाद इनमें परिवर्तन हो जाता है।

धाता और अर्यमा—ये दो आदित्य, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि, खण्डक, वासुकि नामक दो नाग, तुम्बुरु और नारद ये दो गन्धर्व, क्रतुस्थला तथा पुङ्गिकस्थला ये अप्सराएँ, रथकृत्स्न तथा रथौजा ये दो यक्ष, हेति तथा प्रहेति नामके दो राक्षस ये क्रमशः चैत्र और वैशाख मासमें रथके साथ चला करते हैं।

मित्र तथा वरुण नामक दो आदित्य, अत्रि तथा वसिष्ठ ये दो ऋषि, तक्षक और अनन्त दो नाग, मेनका तथा सहजन्या ये दो अप्सराएँ, हाहा-हूहू दो गन्धर्व, रथस्वान् और रथचित्र ये दो यक्ष, पौरुषेय और बध नामक दो राक्षस क्रमशः ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

श्रावण तथा भाद्रपदमें इन्द्र तथा विवस्वान् नामक दो आदित्य, अङ्गिरा तथा भृगु नामक दो ऋषि, एलापर्ण तथा शङ्खपाल ये दो नाग, प्रम्लोचा और दुन्दुका नामक दो अप्सराएँ, भानु और दुर्दुर नामक गन्धर्व, सर्प तथा ब्राह्म नामक दो राक्षस, स्रोत तथा आपूरण नामके दो यक्ष सूर्यरथके साथ चलते रहते हैं।

आश्विन और कार्तिक मासमें पर्जन्य और पूषा नामके दो आदित्य, भारद्वाज और गौतम नामक दो ऋषि, चित्रसेन तथा वसुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामकी दो अप्सराएँ, ऐरावत और धनञ्जय नामक दो नाग एवं सेनजित् तथा सुषेण नामक दो यक्ष, आप एवं वात नामक दो

राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें अंशु तथा भग नामक दो आदित्य, कश्यप और क्रतु नामक दो ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नामक दो नाग, चित्राङ्गद और अरणायु नामक दो गन्धर्व, सहा तथा सहस्या नामक दो अप्सराएँ, ताक्ष्य तथा अरिष्टनेमि नामक यक्ष, आप तथा वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

माघ-फाल्गुनमें क्रमशः पूषा तथा जिष्णु नामक दो आदित्य, जमदग्नि और विश्वामित्र नामक दो ऋषि, काद्रवेय और कम्बलाश्वतर ये दो नाग, धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा नामक दो गन्धर्व, तिलोत्तमा और रम्भा ये दो अप्सराएँ तथा सेनजित् और सत्यजित् नामक दो यक्ष, ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं*।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्रदेव! सभी देवताओंने अपने अंशरूपसे विविध अस्त्र-शस्त्रोंको भगवान् सूर्यकी रक्षाके लिये उन्हें दिया है। इस प्रकार सभी देवता उनके रथके साथ-साथ भ्रमण करते रहते हैं। ऐसा कोई भी देवता नहीं है जो रथके पीछे न चले। इस सर्वदेवमय सूर्यनारायणके मण्डलको ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक यज्ञस्वरूप, भगवद्भक्त विष्णुस्वरूप तथा शैव शिवस्वरूप मानते हैं। ये स्थानाभिमानि देवगण अपने तेजसे भगवान् सूर्यको आप्यायित करते रहते हैं। देवता और ऋषि निरन्तर भगवान् सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं, गन्धर्वगण गान करते रहते हैं तथा अप्सराएँ रथके आगे नृत्य करती हुई चलती रहती हैं। राक्षस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। साठ हजार बालखिल्य ऋषिगण रथको चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। दिवस्पति और स्वयम्भू रथके आगे, भर्ग दाहिनी ओर, पद्मज बायीं ओर, कुबेर दक्षिण दिशामें, वरुण उत्तर दिशामें, वीतिहोत्र

* ये नाम विष्णु आदि अन्य पुराणोंमें कुछ भेदसे मिलते हैं।

और हरि रथके पीछे रहते हैं। रथके पीठमें पृथ्वी, मध्यमें आकाश, रथकी कान्तिमें स्वर्ग, ध्वजामें दण्ड, ध्वजाग्रमें धर्म, पताकामें ऋद्धि-वृद्धि और श्री निवास करती हैं। ध्वजदण्डके ऊपरी भागमें गरुड तथा उसके ऊपर वरुण स्थित हैं। मैनाक पर्वत छत्रका दण्ड, हिमाचल छत्र होकर सूर्यके साथ रहते हैं। इन देवताओंका बल, तप, तेज, योग और तत्त्व जैसा है वैसे ही सूर्यदेव तपते हैं। ये ही देवगण तपते हैं, बरसते हैं, सृष्टिका पालन-पोषण करते हैं, जीवोंके अशुभ-कर्मको निवृत्त करते हैं, प्रजाओंको आनन्द देते हैं और सभी प्राणियोंकी रक्षाके लिये भगवान् सूर्यके साथ भ्रमण करते रहते हैं। अपनी किरणोंसे चन्द्रमाकी वृद्धि कर सूर्यभगवान् देवताओंका पोषण करते हैं। शुक्ल पक्षमें सूर्यकिरणोंसे चन्द्रमाकी क्रमशः वृद्धि होती है और कृष्ण पक्षमें देवगण उसका पान करते हैं। अपनी किरणोंसे पृथ्वीका रस-पान कर सूर्यनारायण वृष्टि करते हैं। इस वृष्टिसे सभी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा अनेक प्रकारके अन्न भी उत्पन्न होते हैं, जिससे पितरों और मनुष्योंकी तृप्ति होती है।

एक चक्रवाले रथमें भगवान् सूर्यनारायण बैठकर एक अहोरात्रमें सातों द्वीप और समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीके चारों ओर भ्रमण करते हैं। एक वर्षमें ३६० बार भ्रमण करते हैं। इन्द्रकी पुरी अमरावतीमें

जब मध्याह्न होता है, तब उस समय यमकी संयमनी पुरीमें सूर्योदय, वरुणकी सुखा नामकी नगरीमें अर्धरात्रि और सोमकी विभा नामकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। संयमनीमें जब मध्याह्न होता है, तब सुखामें उदय, अमरावतीमें अर्धरात्रि तथा विभामें सूर्यास्त होता है। सुखामें जब मध्याह्न होता है, उस समय विभामें उदय, अमरावतीमें आधी रात और संयमनीमें सूर्यास्त होता है। विभा नगरीमें जब मध्याह्न होता है, तब अमरावतीमें सूर्योदय, संयमनीमें आधी रात और सुखा नामकी वरुणकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। इस प्रकार मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए भगवान् सूर्यका उदय और अस्त होता है। प्रभातसे मध्याह्नतक सूर्य-किरणोंकी वृद्धि और मध्याह्नसे अस्ततक हास होता है। जहाँ सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। एक मुहूर्तमें भूमिका तीसवाँ भाग सूर्य लाँघ जाते हैं। सूर्यभगवान्के उदय होते ही प्रतिदिन इन्द्र पूजा करते हैं, मध्याह्नमें यमराज, अस्तके समय वरुण और अर्धरात्रिमें सोम पूजन करते हैं।

विष्णु, शिव, रुद्र, ब्रह्मा, अग्नि, वायु, निर्ऋति, ईशान आदि सभी देवगण रात्रिकी समाप्तिपर ब्राह्मवेलामें कल्याणके लिये सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करते रहते हैं। (अध्याय ५२-५३)



भगवान् सूर्यकी महिमा, विभिन्न ऋतुओंमें उनके अलग-अलग वर्ण तथा उनके फल

भगवान् रुद्रने कहा—ब्रह्मन्! आपने भगवान् सूर्यनारायणके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके सुननेसे हमें बहुत आनन्द मिला, कृपाकर आप उनके माहात्म्यका और वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! इस सचराचर त्रैलोक्यके मूल भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। देवता, असुर,

मानव आदि सभी इन्हींसे उत्पन्न हैं। इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि जितने भी देवता हैं, सबमें इन्हींका तेज व्याप्त है। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यभगवान्को ही प्राप्त होती है। भगवान् सूर्यसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं और यही अन्न प्राणियोंका

जीवन है। इन्हींसे जगत्की उत्पत्ति होती है और अन्तमें इन्हींमें सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ध्यान करनेवाले इन्हींका ध्यान करते हैं तथा ये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मोक्षस्वरूप हैं। यदि सूर्यभगवान् न हों तो क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष तथा युग आदि काल-विभाग हो ही नहीं और काल-विभाग न होनेसे जगत्का कोई व्यवहार भी नहीं चल सकता। ऋतुओंका विभाग न हो तो फिर फल-फूल, खेती, ओषधियाँ आदि कैसे उत्पन्न हो सकती हैं? और इनकी उत्पत्तिके बिना प्राणियोंका जीवन भी कैसे रह सकता है? इससे यह स्पष्ट है कि इस (चराचरात्मक) विश्वके मूलभूत कारण भगवान्

सूर्यनारायण ही हैं। सूर्यभगवान् वसन्त-ऋतुमें कपिलवर्ण, ग्रीष्ममें तप्त सुवर्णके समान, वर्षामें श्वेत, शरद्-ऋतुमें पाण्डुवर्ण, हेमन्तमें ताम्रवर्ण और शिशिर-ऋतुमें रक्तवर्णके होते हैं। इन वर्णोंका अलग-अलग फल है। रुद्र! उसे आप सुनें।

यदि सूर्यभगवान् (असमयमें) कृष्णवर्णके हों तो संसारमें भय होता है, ताम्रवर्णके हों तो सेनापतिका नाश होता है, पीतवर्णके हों तो राजकुमारकी मृत्यु, श्वेतवर्णके हों तो राजपुरोहितका ध्वंस और चित्र अथवा धूम्रवर्णके होनेसे चोर और शस्त्रका भय होता है, परंतु ऐसा वर्ण होनेके अनन्तर यदि वृष्टि हो जाती है तो अनिष्ट फल नहीं होते*।

(अध्याय ५४)



भगवान् सूर्यका अभिषेक एवं उनकी रथयात्रा

रुद्रने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् सूर्यकी रथयात्रा कब और किस विधिसे की जाती है? रथयात्रा करनेवाले, रथको खींचनेवाले, रथको वहन करनेवाले, रथके साथ जानेवाले और रथके आगे नृत्य-गान करनेवाले एवं रात्रि-जागरण करनेवाले पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है? इसे आप लोककल्याणके लिये विस्तारपूर्वक बताइये।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। अब मैं इसका वर्णन करता हूँ, आप इसे एकाग्र-मनसे सुनें।

भगवान् सूर्यकी रथयात्रा और इन्द्रोत्सव—ये दोनों जगत्के कल्याणके लिये मैंने प्रवर्तित किये हैं। जिस देशमें ये दोनों महोत्सव आयोजित किये जाते हैं, वहाँ दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते और न चोरी आदिका कोई भय ही रहता है। इसलिये दुर्भिक्ष, अकाल आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये

इन उत्सवोंको मनाना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको घृतके द्वारा भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानमें बैठकर अग्निलोकको जाता है और वहाँ दिव्य भोग प्राप्त करता है। जो व्यक्ति शर्कराके साथ शालि-चावलका भात, मिष्टान्न और चित्रवर्णके भातको भगवान् सूर्यको अर्पित करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक घृतका उबटन लगाता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है।

पौष शुक्ल सप्तमीको तीर्थोंके जल अथवा पवित्र जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। सूर्यभगवान्के अभिषेकके समय प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पृथूदक (पेहवा), शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत, गङ्गाद्वार, गङ्गासागर, कालप्रिय,

* इस विषयका बृहद् वर्णन 'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पली टीका आदिमें है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें देखा जा सकता है।

मित्रवन, भाण्डीरवन, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा (व्यासनदी), तापी, शिवा, वेत्रवती (वेतवा), गोदावरी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), कृष्णा, वेण्या, शतरुद्र (सतलज), पुष्करिणी, कौशिकी (कोसी) तथा सरयू आदि सभी तीर्थों, नदियों और समुद्रोंका स्मरण करना चाहिये*। दिव्य आश्रमों और देवस्थानोंका भी स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार स्नान कराकर तीन दिन, सात दिन, एक पक्ष अथवा मासभर उस अभिषेकके स्थानमें ही भगवान्का अधिवास करे और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता रहे।

माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको मङ्गल कलशों तथा वितान आदिसे सुशोभित चौकोर एवं पक्के ईंटोंसे बनी वेदीपर सूर्यनारायणको भलीभाँति स्थापित कर हवन, ब्राह्मण-भोजन, वेद-पाठ और विभिन्न प्रकारके नृत्य, गीत, वाद्य आदि उत्सवोंको करना चाहिये। अनन्तर माघ शुक्ला चतुर्थीको अयाचित व्रत करे, पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको रात्रिके समय ही भोजन करे और सप्तमीको उपवास कर हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि सम्पन्न करे। सबको दक्षिणा देकर पौराणिककी भलीभाँति पूजा करे। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णके रथमें भगवान् सूर्यको विराजित करे। उस रथको उस दिन मन्दिरके आगे ही खड़ा करे। रात्रिमें जागरण करे और नृत्य-गीत चलता रहे। माघ शुक्ला अष्टमीको रथयात्रा करनी चाहिये। रथके

आगे विविध बाजे बजते रहें, नृत्य-गीत और मङ्गल वेदध्वनि होती रहे। रथयात्रा प्रथम नगरके उत्तर दिशासे प्रारम्भ करनी चाहिये, पुनः क्रमशः पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें भ्रमण कराना चाहिये। इस प्रकार रथयात्रा करनेसे राज्यके सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। राजाको युद्धमें विजय मिलती है तथा उस राज्यमें सभी प्रजाएँ और पशुगण नीरोग एवं सुखी हो जाते हैं। रथयात्रा करनेवाले, रथको वहन करनेवाले और रथके साथ जानेवाले सूर्यलोकमें निवास करते हैं।

रुद्रने कहा—हे ब्रह्मन्! मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाको किस प्रकार उठाना चाहिये और किस प्रकार रथमें विराजमान करना चाहिये। इस विषयमें मुझे कुछ संदेह हो रहा है, क्योंकि वह प्रतिमा तो स्थिर अर्थात् अचल प्रतिष्ठित है। अतः उसे कैसे चलाया जा सकता है? कृपाकर आप मेरे इस संशयको दूर करें।

ब्रह्माजी बोले—संवत्सरके अवयवोंके रूपमें जिस रथका पूर्वमें मैंने वर्णन किया है, वह रथ सभी रथोंमें पहला रथ है, उसको देखकर ही विश्वकर्माने सभी देवताओंके लिये अलग-अलग विविध प्रकारके रथ बनाये हैं। उस प्रथम रथकी पूजाके लिये भगवान् सूर्यने अपने पुत्र मनुको वह रथ प्रदान किया। मनुने राजा इक्ष्वाकुको दिया और तबसे यह रथयात्रा पूजित हो गयी और परम्परासे चली आ रही है। इसलिये सूर्यकी रथयात्राका उत्सव मनाना चाहिये। भगवान् सूर्य तो सदा आकाशमें भ्रमण करते रहते

* यजेद्भि तीर्थनामानि मनसा संस्मरन् बुधः । प्रयागं पुष्करं देवं कुरुक्षेत्रं च नैमिषम् ॥

पृथूदकं चन्द्रभागां शोणं गोकर्णमेव च । ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम् ॥

गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च । कालप्रियं मित्रवनं शुण्डीरस्वामिनं तथा ॥

चक्रतीर्थं तथा पुण्यं रामतीर्थं तथा शिवम् । वितस्ता हर्षपन्था वै तथा वै देविका स्मृता ॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा सनर्मदा । विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा ॥

गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा वेण्या तथा नदी । शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा ॥

तथान्ये सागराश्चैव सांनिध्यं कल्पयन्तु वै । तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यायतनानि च ॥ (ब्राह्मपर्व ५५।२४-३०)

हैं, इसलिये उनकी प्रतिमाको चलानेमें कोई भी दोष नहीं है। भगवान् सूर्यके भ्रमण करते हुए उनका रथ एवं मण्डल दिखायी नहीं पड़ता, इसलिये मनुष्योंने रथयात्राके द्वारा ही उनके रथ एवं मण्डलका दर्शन किया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंकी प्रतिमाके स्थापित हो जानेके बाद उनको उठाना नहीं चाहिये, किंतु सूर्यनारायणकी रथयात्रा प्रजाओंकी शान्तिके लिये प्रतिवर्ष करनी चाहिये। सोने-चाँदी अथवा उत्तम काष्ठका अतिशय रमणीय और बहुत सुदृढ़ रथका निर्माण करना चाहिये। उसके बीचमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको स्थापित कर उत्तम लक्षणोंसे युक्त अतिशय सुशील हरितवर्णके घोड़ोंको रथमें नियोजित करना चाहिये। उन घोड़ोंको केसरसे रँगकर अनेक आभूषणों, पुष्पमालाओं और चँवर आदिसे अलंकृत करना चाहिये। रथके लिये अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार रथको तैयार कर सभी देवताओंकी पूजा कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। दक्षिणा देकर दीन, अंधे, उपेक्षितों तथा अनाथोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। उत्तम, मध्यम अथवा अधम किसी भी व्यक्तिको विमुख नहीं होने देना चाहिये। रथयात्रास्वरूप इस सूर्यमहायागमें भूखसे पीड़ित, बिना भोजन किये यदि कोई व्यक्ति भग्न आशावाला होकर लौट जाता है तो इस दुष्कृत्यसे उसके स्वर्गस्थ पितरोंका अधःपतन हो जाता है*। अतः सूर्यभगवान्के इस यज्ञमें भोजन और दक्षिणासे सबको संतुष्ट करना चाहिये, क्योंकि बिना दक्षिणाके यज्ञ प्रशस्त नहीं होता तथा निम्नलिखित मन्त्रोंसे देवताओंको उनका प्रिय पदार्थ समर्पित करना चाहिये—

बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा ॥

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ।

असुरा यातुधानाश्च रथस्था यास्तु देवताः ॥

दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ।

जगतः स्वस्ति कुर्वन्तु ये च दिव्या महर्षयः ॥

मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः ।

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा ॥

(ब्राह्मपर्व ५५। ६८—७१)

इन मन्त्रोंसे बलि देकर 'वामदेव्य०', 'पवित्र०', 'मानस्तोक०' तथा 'रथन्तर०' इन ऋचाओंका पाठ करे। अनन्तर पुण्याहवाचन और अनेक प्रकारके मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि कर सुन्दर एवं समतल मार्गपर रथको चलाये, जिससे कहींपर धक्का न लगे। घोड़ेके अभावमें अच्छे बैलोंको रथमें लगाना चाहिये या पुरुषगण ही रथको खींचें। तीस या सोलह ब्राह्मण जो शुद्ध आचरणवाले हों तथा व्रती हों, वे प्रतिमाको मन्दिरसे उठाकर बड़ी सावधानीसे रथमें स्थापित करें। सूर्य-प्रतिमाके दोनों ओर सूर्यदेवकी राज्ञी (संज्ञा) एवं निक्षुभा (छाया) नामक दोनों पत्नियोंको स्थापित करे। निक्षुभाको दाहिनी ओर तथा राज्ञीको बायीं ओर स्थापित करना चाहिये। सदाचारी वेदपाठी दो ब्राह्मण प्रतिमाओंके पीछेकी ओर बैठें और उन्हें सँभालकर स्थिर रखें। सारथि भी कुशल रहना चाहिये। सुवर्णदण्डसे अलंकृत छत्र रथके ऊपर लगाये, अतिशय सुन्दर रत्नोंसे जटित सुवर्णदण्डसे युक्त ध्वजा रथपर चढ़ाये, जिसमें अनेक रंगोंकी सात पताकाएँ लगी हों। रथके आगेके भागमें सारथिके रूपमें ब्राह्मणको बैठना चाहिये। श्रद्धारहित व्यक्तिको रथके ऊपर नहीं चढ़ना चाहिये, क्योंकि जो श्रद्धारहित व्यक्ति रथपर आरूढ़ होता है, उसकी संतति नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको ही रथके वहन करनेका अधिकार है। अपने स्थानसे चलकर सर्वप्रथम रथको उत्तरद्वारपर ले जाना चाहिये। वहाँ

* सूर्यक्रतौ तु वितते एवमाहुर्मनीषिणः ॥

यश्चिन्तयति भग्राशः क्षुधावातप्रपीडितः। अदातुर्हि पितृंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत् ॥ (ब्राह्मपर्व ५५। ६५-६६)

एक दिनतक रथकी पूजा करे, विविध नृत्य-गीतादि-उत्सव, वेदपाठ तथा पुराणोंकी कथा होनी चाहिये। वहाँ ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये। नवमीके दिन रथ चलाकर पूर्वद्वारपर ले जाय, एक दिन वहाँ रहे। तीसरे दिन दक्षिणद्वारपर रथ ले जाय तथा चौथे दिन पश्चिमद्वारपर रथ ले जाय। वहाँसे नगरके मध्यमें रथ ले जाय, वहाँ पूजन और उत्सव करे, दीपमालिका प्रज्वलित करे, ब्राह्मणोंको दान दे और भोजन कराये। अनन्तर वहाँसे मन्दिरमें

रथको लाना चाहिये। वहाँ नगरके सभी लोग मिलकर पूजन और उत्सव करें। एक दिन-रात रथमें ही प्रतिमा रहे। दूसरे दिन भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर बड़ी धूमधामसे मन्दिरमें स्थापित करे। इस प्रकार सप्तमीसे त्रयोदशीतक रथयात्रा होनी चाहिये और चतुर्दशीको प्रतिमा पूर्व स्थानमें स्थापित कर दे। इस रथयात्राके करनेसे सभी विघ्न-बाधाएँ निवृत्त हो जाती हैं।

(अध्याय ५५)



रथयात्रामें विघ्न होनेपर एवं गोचरमें दुष्ट ग्रहोंके आ जानेपर शान्तिका विधान और तिलकी महिमा

भगवान् रुद्रने पूछा—ब्रह्मन्! आप पुनः रथयात्राका वर्णन करें।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्र! रथको धीरे-धीरे सममार्गपर चलाया जाय, जिससे रथको धक्का आदि न लगने पाये। मार्गकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रतीहार और दण्डनायक उस मार्गमें जायँ। पिंगल, रक्षक, द्वारक, दिण्डी तथा लेखक—ये भी रथके साथ-साथ चलें। इतनी सतर्कता और कुशलतासे रथको ले जाया जाय कि रथका कोई अङ्ग-भङ्ग न हो। रथका ईषादण्ड टूटनेपर ब्राह्मणोंको, अक्ष टूटनेपर क्षत्रियोंको, तुला टूटनेपर वैश्योंको, शय्याके टूटनेपर शूद्रोंको भय होता है। युगके भङ्गसे अनावृष्टि, पीठके भङ्गसे प्रजाको भय, रथका चक्र टूटनेसे शत्रुसेनाका आगमन, ध्वजाके गिरनेसे राज-भङ्ग तथा प्रतिमा खण्डित होनेसे राजाकी मृत्यु होती है। छत्रके टूटनेपर युवराजकी मृत्यु होती है। इनमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पात होनेपर उसकी शान्ति अवश्य करानी चाहिये तथा ब्राह्मणको भोजन और दान देना चाहिये एवं विधिपूर्वक ग्रह-शान्ति करानी चाहिये। रथके ईशानकोणमें वेदी अथवा कुण्ड

बनाकर घृत और समिधाओंसे देवता तथा ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये हवन करना चाहिये और इन नाम-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये—‘ॐ अग्नये स्वाहा, ॐ सोमाय स्वाहा, ॐ प्रजापतये स्वाहा।’—इत्यादि। अनन्तर शान्ति एवं कल्याणके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

स्वस्त्यस्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञे तथैव च ।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै ॥
भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च ।
स्वश्चैवास्तु तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रवेः ॥
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि ।
प्रजापाल ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ॥

(ब्राह्मपर्व ५६। १६—१९)

अपनी जन्मराशिसे दुष्ट स्थानमें स्थित ग्रहोंकी प्रसन्नता तथा शान्तिके लिये ग्रह-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। ये समिधाएँ प्रादेशमात्र लम्बी होनी चाहिये। सूर्यके लिये अर्ककी, चन्द्रमाके लिये पलाशकी, मङ्गलके लिये खदिरकी, बुधके लिये अपामार्गकी, बृहस्पतिके लिये पीपलकी, शुक्रके

लिये गूलरकी, शनिके लिये शमीकी, राहुके लिये दूर्वाकी और केतुके लिये कुशाकी समिधा ही हवनके लिये प्रयोग करना चाहिये। उत्तम गौ, शङ्खु, लाल बैल, सुवर्ण, वस्त्र युगल, श्वेत अश्व, काली गौ, लौहपात्र और छाग—ये क्रमशः नौ ग्रहोंकी दक्षिणा हैं। गुड़ और भात, घी-मिश्रित खीर, हविष्यान्न, क्षीरान्न, दही-भात, घृत, तिल और उड़दके बने पक्वान्न, गूदोंवाला फल, चित्रवर्णका भात एवं काँजी—ये क्रमशः नवग्रहोंके भोजन हैं। जैसे शरीरमें कवच पहन लेनेसे बाण नहीं लगते, वैसे ही ग्रहोंकी शान्ति करनेसे किसी प्रकारका उपघात नहीं होता। अहिंसक, जितेन्द्रिय, नियममें स्थित और न्यायसे धनार्जन करनेवाले पुरुषोंपर ग्रहोंका सदा अनुग्रह रहता है। यश, धन, संतानकी प्राप्तिके लिये, अनावृष्टि होनेपर, आरोग्य-प्राप्तिके लिये तथा सभी उपद्रवोंकी शान्तिके लिये ग्रहोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। संतानसे रहित, दुष्ट संतानवाली, मृतवत्सा, मात्र कन्या संतानवाली स्त्री संतानदोषकी निवृत्तिके लिये, जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्यके लिये, रोगी पुरुष रोगकी शान्तिके लिये अवश्य ग्रहोंकी शान्ति करे, ऐसा मनीषियोंने कहा है^१। ग्रहोंकी प्रतिमा ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे और शीशे आदिकी बनवाकर अथवा इनके चित्रका निर्माण करा कर जिस ग्रहका जो वर्ण हो उसी रंगके वस्त्र एवं पुष्प उन्हें समर्पित करे। गुग्गुलुका धूप सभीको अर्पित करना चाहिये।

‘आ कृष्णेन०’ (यजु० ३३।४३), ‘इमं देवा०’ (यजु० ९।४०) इत्यादि नवग्रहोंके अलग-अलग मन्त्रोंसे एक-एक ग्रहके नामसे समिधा, घृत, शहद और दहीकी एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ दे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। जो ग्रह जिसके गोचर अथवा कुण्डलीमें दुष्ट स्थानपर स्थित हो, उसे उस ग्रहकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। महादेव! मैंने इन ग्रहोंको ऐसा वर दिया है कि लोगोंद्वारा तुम सब पूजित होओगे। राजाओंका उत्थान और पतन तथा मनुष्योंका उदय और सम्पत्तियोंका नाश ग्रहोंके अधीन है, इसलिये ग्रहशान्ति अवश्य करनी चाहिये। ग्रह, गाय, राजा, गुरुजन तथा ब्राह्मण पूजन करनेवाले व्यक्तिको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। इनका अपमान करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके दुःख मिलते हैं। यज्ञ करनेवाले, सत्यवादी, जप, होम, उपवास आदिमें तत्पर धर्मात्मा पुरुषोंकी सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं^२।

इस प्रकारसे शान्ति कर रथको पुनः चलाना चाहिये और शेष मार्गोंमें घुमाकर अपने स्थानमें पहुँच जानेपर रथ-स्थित देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। उत्पात होनेपर ग्रहोंकी शान्तिके समान ही रथमें स्थित सभी देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सभी तरहके उत्पातोंकी सब प्रकारसे शान्ति हो जाती है।

दुष्ट ग्रहोंकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको तिल प्रदान करे अथवा घीके साथ तिलोंका हवन करे

१- यथा बाणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम् । तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥

अहिंसकस्य दान्तस्य धर्माजितधनस्य च । नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥

ग्रहाः पूज्या सदा रुद्र इच्छता विपुलं यशः । श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥

वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः । यानपत्या भवेन्नारी दुष्प्रजाश्चापि या भवेत् ॥

बाला यस्याः प्रम्रियन्ते या च कन्याप्रजा भवेत् । राज्यभ्रष्टो नृपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत् ॥

ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः । (ब्राह्मपर्व ५६।३०—३५)

२- ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च गुरवो ब्राह्मणास्तथा । पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥

यज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम् । जपहोमपराणां च सर्वं दुष्टं प्रशाम्यति ॥ (ब्राह्मपर्व ५६।४७, ४९)

और देवताओंको धूप दे। तिल देवताओंके लिये स्वाहारूप अमृत, पितरोंके लिये स्वधारूप अमृत तथा ब्राह्मणोंके लिये आश्रयस्वरूप कहे गये हैं। ये तिल कश्यपके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा देवता एवं पितरोंको अति प्रिय हैं। स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजनमें परम पवित्र माने गये हैं*।

इस प्रकार ग्रह और देवताओंका पूजन कर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर मण्डलमें स्थापित

करे, फिर विघ्न-बाधाओंकी शान्तिके लिये दीप, जल, जौ, अक्षत, कपासके बीज, नमक तथा धानकी भूसीसे आरती कर पत्तियोंसहित सूर्यनारायणको वेदीके ऊपर स्थापित करे। वहाँ दस दिनतक उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। दस दिनतक होनेवाली यह पूजा दशाहिका पूजा कहलाती है। इस प्रकार पूजनकर फिर भगवान् सूर्यनारायणको पूर्व स्थानपर स्थापित करना चाहिये। (अध्याय ५६-५७)



सूर्यनारायणकी रथयात्राका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे महादेव! इस प्रकार अमित ओजस्वी भगवान् भास्करकी रथयात्रा करनेवाला और दूसरेसे करानेवाला व्यक्ति परार्ध वर्षों (ब्रह्माजीकी आधी आयु)—तक सूर्यलोकमें निवास करता है। उस व्यक्तिके कुलमें न कोई दरिद्र होता है न कोई रोगी। सूर्यभगवान्के अभ्यङ्गके लिये घी समर्पण करनेवाले तथा अनेक प्रकारका तिलक करनेवाले व्यक्तिको सूर्यलोक प्राप्त होता है। गङ्गा आदि तीर्थोंसे जल लाकर जो सूर्यनारायणको स्नान कराता है, वह वरुणलोकमें निवास करता है। लाल रंगका भात और गुड़का नैवेद्य समर्पित करनेवाला व्यक्ति प्रजापतिलोकको प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको स्नान कराकर पूजन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति सूर्यदेवको रथपर चढ़ाता है, रथके मार्गको पवित्र करता और पुष्प, तोरण, पताका आदिसे अलंकृत करता है, वह वायुलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति नृत्य-गीत आदिके द्वारा बृहद् उत्सव मनाता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है। जब सूर्यदेव रथपर विराजमान होते हैं,

उस दिन जागरण करनेवाला पुण्यवान् व्यक्ति निरन्तर आनन्द प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यकी सेवा आदिके लिये व्यक्तिको नियोजित करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्तकर सूर्यलोकमें निवास करता है। रथारूढ भगवान् सूर्यका दर्शन करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जब रथकी यात्रा उत्तर अथवा दक्षिण दिशाकी ओर होती है, उस समय दर्शन करनेवाला व्यक्ति धन्य है। जिस दिन रथयात्रा हो, उसके सालभर बाद उसी दिन पुनः रथयात्रा करनी चाहिये। यदि वर्षके बाद यात्रा न करा सके तो बारहवें वर्ष अतिशय उत्साहके साथ उत्सव सम्पन्न कर यात्रा सम्पन्न करानी चाहिये। बीचमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

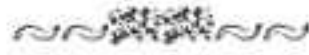
इसी प्रकार इन्द्रध्वजके उत्सवमें भी यदि विघ्न हो जाय तो बारहवें वर्षमें ही उसे सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति रथयात्राकी व्यवस्था करता है, वह इन्द्रादि लोकपालके सायुज्यको प्राप्त करता है। यात्रामें विघ्न करनेवाले व्यक्ति मंदेह जातिके राक्षस होते हैं। सूर्यनारायणकी पूजा किये बिना जो अन्य देवताओंकी पूजा करता है, वह पूजा निष्फल है।

* देवानाममृतं ह्येते पितृणां हि स्वधामृतम् । शरणं ब्राह्मणानां च सदा ह्येतान् विदुर्बुधाः॥

कश्यपस्याङ्गजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर । स्नाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्यशने पराः॥ (ब्राह्मपर्व ५७।२५-२६)

रथयात्राके समय जो सूर्यनारायणका दर्शन करता है, वह निष्पाप हो जाता है। षष्ठी, सप्तमी, पूर्णिमा, अमावास्या और रविवारके दिन दर्शन करनेसे बहुत पुण्य होता है। आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमाको दर्शन करनेसे अनन्त पुण्य होता है। इन तीन मासोंमें भी रथयात्रा करनी चाहिये। इनमें भी कार्तिकी (कार्तिक-पूर्णिमा)-को विशेष फलदायक होनेसे महाकार्तिकी कहा गया है। इन समयोंमें उपवासकर जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह सद्गतिको प्राप्त करता है। संसारपर अनुग्रह करनेके लिये प्रतिमामें स्थित

होकर सूर्यदेव स्वयं पूजन ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति मुण्डन कराकर स्नान, जप, होम, दान आदि करता है, वह दीक्षित होता है। सूर्य-भक्तको अवश्य ही मुण्डन कराना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार दीक्षित होकर सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। महादेवजी! इस रथयात्राके विधानका मैंने वर्णन किया। इसे जो पढ़ता है, सुनता है, वह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विधिपूर्वक रथयात्राका सम्पादन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है। (अध्याय ५८)



रथसप्तमी तथा भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! माघ मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास करके गन्धादि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर रात्रिमें उनके सम्मुख शयन करे। सप्तमीमें प्रातःकाल विधिपूर्वक पूजा करे और उदारतापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीको व्रतकर रथयात्रा करे। कृष्णपक्षमें तृतीया तिथिको एकभुक्त, चतुर्थीको नक्तव्रत, पञ्चमीको अयाचितव्रत*, षष्ठीको पूर्ण उपवास तथा सप्तमीको पारण करे। रथस्थ भगवान् सूर्यकी भलीभाँति पूजाकर सुवर्ण तथा रत्नादिसे अलंकृत तथा तोरण, पताकादिसे सुसज्जित रथमें सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापित कर ब्राह्मणकी पूजा करके उसका दान कर दे। स्वर्णके अभावमें चाँदी, ताम्र, आटे आदिका रथ बनाकर आचार्यको दान करे। महादेव! यह माघसप्तमी बहुत उत्तम तिथि है, पापोंका हरण करनेवाली इस रथसप्तमीको भगवान् सूर्यके निमित्त किया गया स्नान, दान, होम, पूजा आदि सत्कर्म हजार गुना फलदायक हो जाता है। जो कोई भी इस व्रतको करता है, वह अपने

अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करता है। इस सप्तमीके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करनेवाला व्यक्ति ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पा जाता है।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस प्रकार रथयात्राका विधान बताकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और रुद्रदेवता भी अपने धाम चले गये। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं, यह बतायें।

राजा शतानीकने कहा—हे महाराज! सूर्यदेवके प्रभावका मैं कहाँतक वर्णन करूँ। उन्हींके अनुग्रहसे युधिष्ठिर आदि मेरे पितामहोंको सभी प्रकारका दिव्य भोजन प्रदान करनेवाला अक्षय पात्र मिला था, जिससे वनमें भी वे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करते थे। जिन भगवान् सूर्यकी देवता, ऋषि, सिद्ध तथा मनुष्य आदि निरन्तर आराधना करते रहते हैं, उन भगवान् भास्करके माहात्म्यको मैंने अनेक बार सुना है, पर उनका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती। जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है तथा जिनके उदय होनेसे ही सारा संसार चेष्टावान् होता है, जिनके हाथोंसे

* बिना किसीसे माँगे जो भोजन मिल जाय, उसे अयाचितव्रत कहते हैं।



लोकपूजित ब्रह्मा और विष्णु तथा ललाटसे शंकर उत्पन्न हुए हैं, उनके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है? अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि जिन मन्त्र, स्तोत्र, दान, स्नान, जप, पूजन, होम, व्रत तथा उपवासादि कर्मोंके करनेसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर सभी कष्टोंको निवृत्त करते हैं और संसार-सागरसे मुक्त करते हैं, आप उन्हीं उत्तम

मन्त्र, स्तोत्र, रहस्य, विद्या, पाठ, व्रत आदिको बतायें, जिनसे भगवान् सूर्यका कीर्तन हो और जिह्वा धन्य हो जाय। क्योंकि वही जिह्वा धन्य है जो भगवान् सूर्यका स्तवन करती है। सूर्यकी आराधनाके बिना यह शरीर व्यर्थ है। एक बार भी सूर्यनारायणको प्रणाम करनेसे प्राणीका भवसागरसे उद्धार हो जाता है। रत्नोंका आश्रय मेरुपर्वत, आश्चर्योंका आश्रय आकाश, तीर्थोंका आश्रय गङ्गा और सभी देवताओंके आश्रय भगवान् सूर्य हैं। मुने! इस प्रकार अनन्त गुणोंवाले भगवान् सूर्यके माहात्म्यको मैंने बहुत बार सुना है। देवगण भी भगवान् सूर्यकी ही आराधना करते हैं, यह भी मैंने सुना है। अब मेरा यही दृढ़ संकल्प है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा स्मरणमात्रसे समस्त पाप-तापोंको दूर करनेवाले भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक उपासना कर मैं भी संसारसे मुक्त हो जाऊँ।

(अध्याय ५९-६०)

भगवान् सूर्यद्वारा योगका वर्णन एवं ब्रह्माजीद्वारा दिण्डीको दिया गया क्रियायोगका उपदेश

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! ऋषियोंको जिस प्रकार ब्रह्माजीने सूर्यनारायणकी आराधनाके विधानका उपदेश दिया था, उसे मैं सुनाता हूँ।

किसी समय ऋषियोंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि महाराज! सभी प्रकारकी चित्तवृत्तिके निरोधरूपी योगको आपने कैवल्यपदको देनेवाला कहा है, किंतु यह योग अनेक जन्मोंकी कठिन साधनाके द्वारा प्राप्त हो सकता है। क्योंकि इन्द्रियोंको बलात् आकृष्ट करनेवाले विषय अत्यन्त दुर्जय हैं, मन किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होता, राग-द्वेष आदि दोष नहीं छूटते और पुरुष अल्पायु होते हैं,

इसलिये योगसिद्धिका प्राप्त होना अतिशय कठिन है। अतः आप ऐसे किसी साधनका उपदेश करें जिससे बिना परिश्रमके ही निस्तार हो सके।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वरो! यज्ञ, पूजन, नमस्कार, जप, व्रतोपवास और ब्राह्मण-भोजन आदिसे सूर्यनारायणकी आराधना करना ही इसका मुख्य उपाय है। यह क्रियायोग है। मन, बुद्धि, कर्म, दृष्टि आदिसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे। वे ही परब्रह्म, अक्षर, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता, अव्यक्त, अचिन्त्य और मोक्षको देनेवाले हैं। अतः आप उनकी आराधना कर अपने मनोवाञ्छित फलको

प्राप्त करें और भवसागरसे मुक्त हो जायँ। ब्रह्माजीसे यह सुनकर मुनिगण सूर्यनारायणकी उपासनारूप क्रियायोगमें तत्पर हो गये। हे राजन्! विषयोंमें डूबे हुए संसारके दुःखी जीवोंको सुख प्रदान करनेवाले सूर्यनारायणके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, इसलिये उठते-बैठते, चलते-सोते, भोजन करते हुए सदा सूर्यनारायणका ही स्मरण करो, भक्तिपूर्वक उनकी आराधनामें प्रवृत्त होओ, जिससे जन्म-मरण, आधि-व्याधिसे युक्त इस संसारसमुद्रसे तुम पार हो जाओगे। जो पुरुष जगत्कर्ता, सदा वरदान देनेवाले, दयालु और ग्रहोंके स्वामी श्रीसूर्यनारायणकी शरणमें जाता है, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है।

सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—राजन्! प्राचीन कालमें दिण्डीको ब्रह्महत्या लग गयी थी। उस ब्रह्महत्याके पापको दूर करनेके लिये उन्होंने बहुत दिनोंतक सूर्यनारायणकी आराधना और स्तुति की। उससे प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उनके पास आये। भगवान् सूर्यने कहा—‘दिण्डिन्! तुम्हारी भक्तिपूर्वक की गयी स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट वर माँगो।’

दिण्डीने कहा—महाराज! आपने पधारकर मुझे दर्शन दिया, यह मेरे सौभाग्यकी बात है। यही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ वर है। पुण्यहीनोंके लिये आपका दर्शन सर्वदा दुर्लभ है। आप सबके हृदयमें स्थित हैं, अतः आप सबका अभिप्राय जानते हैं। जिस प्रकार मुझे ब्रह्महत्या लगी है, उसे तो आप जानते ही हैं। भगवन्! आप मुझपर ऐसा अनुग्रह करें कि मैं इस निन्दित ब्रह्महत्यासे तथा अन्य पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मैं सफल-मनोरथ हो जाऊँ। आप संसारसे उद्धारका उपाय बतलायें, जिसके आचरणसे संसारके प्राणी सुखी

हों। दिण्डीके इस वचनको सुनकर योगवेत्ता भगवान् सूर्यने उन्हें निर्बीज-योगका उपदेश दिया, जो दुःखके निवारणके लिये औषधरूप है।

दिण्डीने प्रार्थना करते हुए कहा—महाराज! यह निष्कल-योग तो बहुत कठिन है, क्योंकि इन्द्रियोंको जीतना, मनको स्थिर करना, अहं-शरीरादिका अभिमान और ममताका त्याग करना, राग-द्वेषसे बचना—ये सब अतिशय कष्टसाध्य हैं। ये बातें कई जन्मोंके अभ्यास करनेसे प्राप्त होती हैं। अतः आप ऐसा साधन बतलायें, जिससे अनायास बिना विशेष परिश्रमके ही फलकी प्राप्ति हो जाय।

भगवान् सूर्यने कहा—गणनाथ! यदि तुम्हें मुक्तिकी इच्छा है तो समस्त क्लेशोंको नष्ट करनेवाले क्रियायोगको सुनो। अपने मनको मुझमें लगाओ, भक्तिसे मेरा भजन करो, मेरा यजन करो, मेरे परायण हो जाओ, आत्माको मेरेमें लगा दो, मुझे नमस्कार करो, मेरी भक्ति करो, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मुझे परिव्याप्त समझो*, ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण दोषोंका विनाश हो जायगा और तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। भलीभाँति मुझमें आसक्त हो जानेपर राग-लोभादि दोषोंके नाश हो जानेसे कृतकृत्यता हो जाती है। अपने मनको स्थिर करनेके लिये सोना, चाँदी, ताम्र, पाषाण, काष्ठ आदिसे मेरी प्रतिमाका निर्माण कराकर या चित्र ही लिखकर विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करो। सर्वभावसे प्रतिमाका आश्रय ग्रहण करो। चलते-फिरते, भोजन करते, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उसीका ध्यान करो, उसे पवित्र तीर्थोंके जलसे स्नान कराओ। गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, विविध नैवेद्य और जो पदार्थ स्वयंको प्रिय हों उन्हें अर्पण करो। इन विविध उपचारोंसे मेरी प्रतिमाको संतुष्ट करो।

* मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥ (ब्राह्मपर्व ६२। १९; गीता ९। ३४)